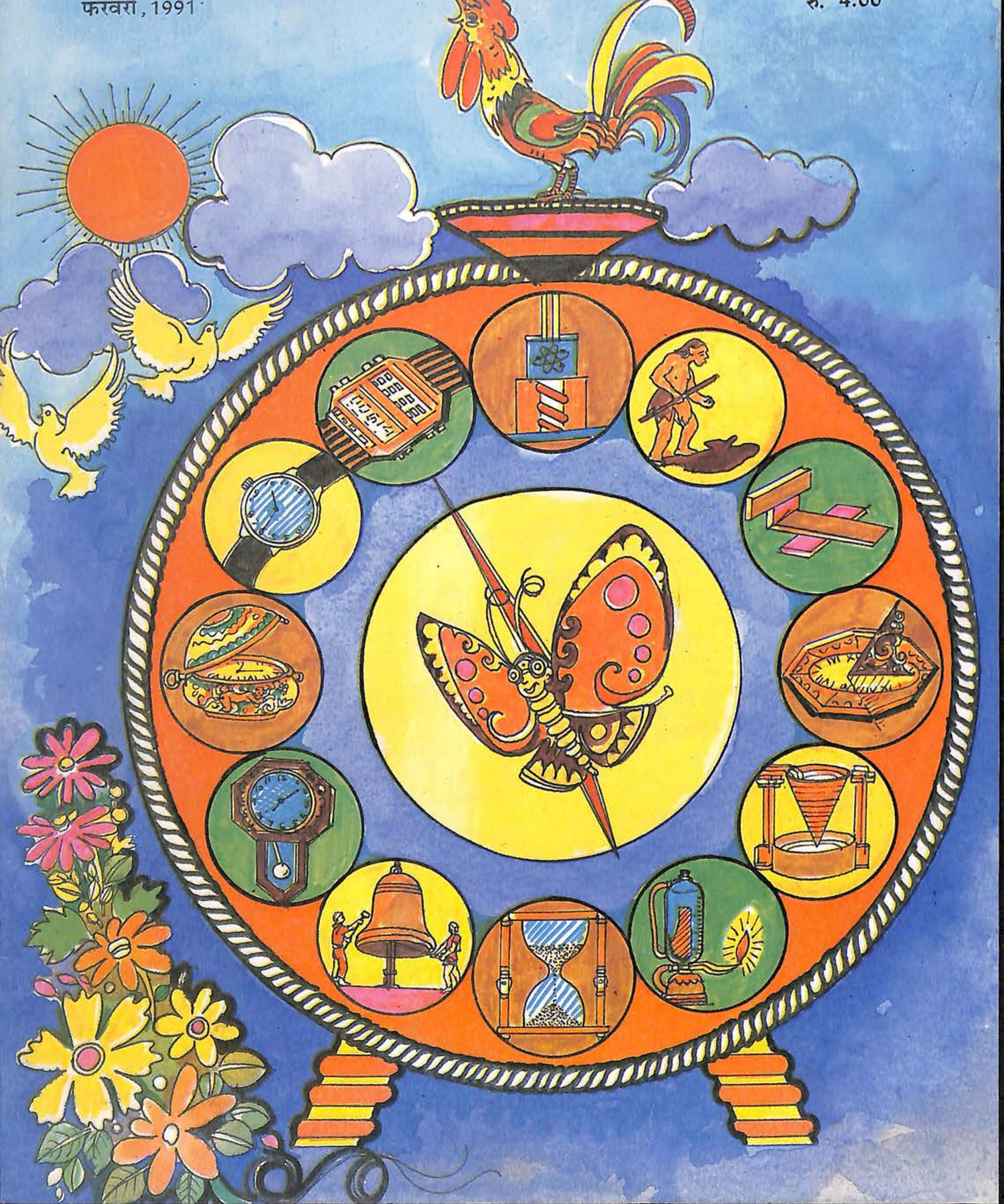
चकमक

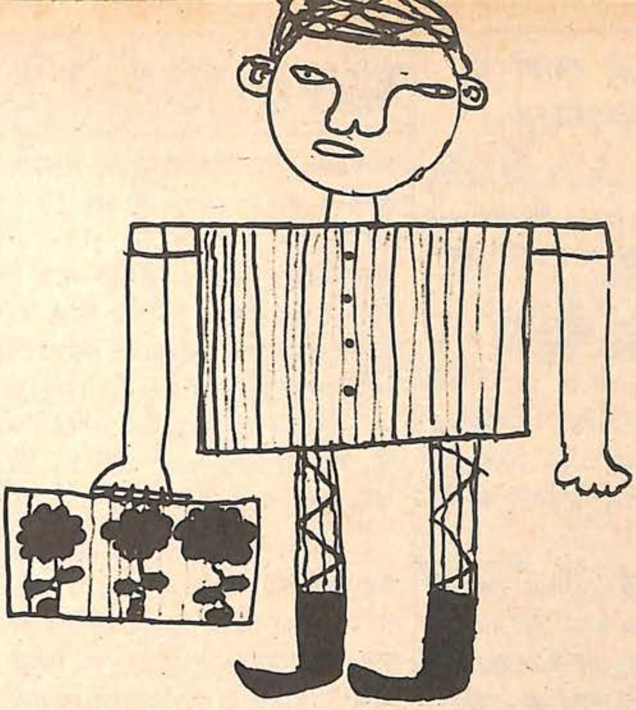
फरवरी, 1991

रु. 4.00





पारूल, साढ़े चार वर्ष, टीकमगढ़



जयेश कुमार गहलोत, पांचवीं, छकतला, झाबुआ

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष 6 अंक 8 फरवरी, 1991

चकमक का चंदा
एक प्रति: चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक : चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ़्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा रचना भेजने का पता
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.)
फोन : 563380

काग़ज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से।
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

आवरण : सतीश चव्हाण

आवरण पर घड़ी के डायल में अंकों के स्थान पर समय मापने के विभिन्न तरीकों का विकसित होता एक क्रम दर्शाया गया है।

इस अंक में...

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

लड़कियां ही खाती हैं सबकी झिड़कियां।

"अख़्तर के अब्बा कौन?" बालिका वर्ष में बालिकाओं की समस्याओं की ओर ध्यान इंगित करने का अनूठा व सराहनीय प्रयास लगा।

निश्चय ही अख़्तर खुशनसीब है कि वह उस परिवार या मां का बेटा है जहां वह अपनी मां को समाज में प्राथमिकता या सर्वोच्चता दे सकता है। लेकिन ऐसे अख़्तर कितने हैं? बस अंगुलियों पर गिने जा सकने वाले।

यह न जाने कैसी परम्परा हमारे देश की संस्कृति में शामिल है कि जहां लड़कियों को पीछे ही धकेला जाता है। आश्चर्य तो तब होता है जब ऐसा काम खुद लड़कियों, महिलाओं यानी मांओं द्वारा सम्पन्न होता है।

असली बात तो यह है कि कई पालक लड़कियों को पढ़ाना ही ग़ैर ज़रूरी समझते है। लड़कियों का घरेलू कामकाज करना और उनमें दक्षता प्राप्त करना वे ज़्यादा ज़रूरी समझते हैं। इसके अलावा ज़्यादातर पालकों को लड़के-लड़कियों का साथ-साथ पढ़ना भी पसंद नहीं होता।

लड़कियां चाहती हैं खूब पढ़ें, डिग्रियां लें, खेलकूद में नाम रोशन करें सृजनात्मक काम करें, लेकिन यह सब तो भारतीय समाज में जैसे लड़कों के लिए सौ प्रतिशत आरक्षित है।

□ **कुंदन राठौड़, मंडवाडा, प. निमाड़; अश्विनी पंडित, संजीव पंडित, समस्तीपुर**

खेद है.............

जनवरी, 91 अंक में पृष्ठ 15 पर ग्रेगोरियन 'कैलेंडर यानी आज का कैलेंडर' उपशीर्षक का पहला पैराग्राफ पूरा प्रकाशित नहीं हुआ है। हमें इसका खेद है। पैराग्राफ इस तरह पढ़ें—

'जूलियन कैलेंडर की उक्त गड़बड़ के कारण कैथोलिक चर्च वाले अधिक चिंतित थे। क्योंकि इस गड़बड़ के रहते ईस्टर के त्यौहार का खिसकते-खिसकते सर्दियों में पहुंच जाना संभव था। ईस्टर वसंत में मनाया जाता था और धार्मिक नेता इस परंपरा को बनाए रखना चाहते थे।'

पाठक लिखते हैं

सामाजिक और परिवारिक बुराईयों के कारण ही आज लड़के लड़कियों में विभेद किया जा रहा है। आज भी कुछ इलाकों में लड़कियां जब स्कूल या कॉलेज जाती हैं तो उन्हें बुरी निगाहों से देखा जाता है। नौकरी करने वाली औरतों को समाज में उचित स्थान नहीं दिया जाता है। लोगों की यह दलील रहती है कि 'ये औरतें दिन भर मर्दों के साथ काम करती हैं, और उनसे गप्प लड़ाती हैं।'

इन लोगों का यह कथन पुराने और दकियानूसी रीति-रिवाजों का फल है। शिक्षा का अभाव ही ग्रामीण इलाकों के लोगों को पुराने रीति-रिवाजों को मानने पर मजबूर करता है। शिक्षा के स्तर में सुधार के साथ साथ स्त्रियों को अपने ढंग से कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता मिलेगी।

□ **मिथलेश कुमार, तिसखोरा, बिहार**

दिसंबर, 90 के अंक में नाटक *'नजानू कवि बना'* बहुत अच्छा लगा।

□ **दिवाकर मिश्र, वाल्टरगंज, बस्ती, उ.प्र. परसलाल, रामनगर, सरगुजा, म.प्र.**

दिसंबर अंक में *'आकाश की छतरी में छेद'* और *'अख़्तर के अब्बा कौन?'* बहुत ही पसंद आया। ओज़ोन के छेद के बारे में मैंने अपनी बड़ी बहन से भी जानकारी ली। इससे मुझे पता चला कि O_3 की सतह को हटाने में आटोमोबाइल्स के धुएं का भी हाथ है। सिर्फ CFC के प्रयोग न करने से ही हम O_3 की छतरी को नहीं बचा सकते। इसे रोकने के लिए हमें आटोमोबाइल्स का प्रयोग भी कम करना पड़ेगा।

□ **श्रुति अरोड़ा, साहिबाबाद, उ.प्र.**

□ **हरिप्रसाद सैनी, फतेहपुर**

एक चिट्ठी ज्यों की त्यों.....

कार्यालय, बालक प्राथमिक विद्यालय, पारसेन, ग्वालियर, म.प्र.

आदरणीय संपादक जी, *26/12/90*

जयहिंद

विवशता ने चारों तरफ से जकड़ दिया, लाचार होकर आज लेखनी द्वारा अपने विचार आप तक पहुंचाने के लिए पत्र लिखना ही पड़ा। एक ही भवन में, एक ही समय पर शासकीय माध्यमिक विद्यालय पारसेन एवं शासकीय बालक प्राथमिक विद्यालय पारसेन साथ-साथ लगते हैं। माध्यमिक विद्यालय पारसेन में 200 छात्र हैं एवं प्राथमिक विद्यालय में 250 छात्र हैं। माध्यमिक विद्यालय पारसेन के नाम से आपके यहां से एक पत्रिका आती है।

दिसंबर सन् 1990 की चकमक पत्रिका पोस्टमेन द्वारा सुबह विद्यालय समय से पूर्व विद्यालय प्रांगण में बैठे छात्रों को दी गई। प्राथमिक विद्यालय के नन्हे-मुन्ने छात्र धूप में बैठे इस चकमक पत्रिका को पढ़ रहे थे। शिक्षकगण उस समय नहीं आ पाए थे। थोड़ी देर में माध्यमिक विद्यालय के छात्र आ गए। उन्होंने उन नन्हे-मुन्ने छात्रों के झुंड में जाकर देखा कि ये सारे बच्चे चकमक पढ़ रहे हैं, तो वे अकड़कर कहने लगे कि यह चकमक हमारे स्कूल की है, तुम्हारे स्कूल की नहीं।

चकमक की झपटा-झपटी के बाद वे आपस में लड़ गए, एक-दूसरे के कपड़े फाड़ दिए। कुछ छात्रों ने एक-दूसरे से पत्थरबाजी की, अधिकांश छात्र लहु-लुहान हो गए। छात्रों के दोनों गुटों ने बड़ा रूप चकमक पत्रिका के आधार पर लिया। जब तक संस्था के शिक्षकगण एवं मैं स्वयं भी पहुंच गया। झगड़े को शांत किया। ऐसी विषम परिस्थिति के कारण आज पत्रिका हेतु आपको यह पत्र लिखना ही पड़ा।

विद्यालय में पैसे के बजट का प्रावधान नहीं है, निशुल्क शिक्षा दी जाती है। अगर आपके यहां निशुल्क पत्रिका भेजने का कोई रूप हो तो अवश्य निम्नांकित पते पर नन्हे-मुन्ने छात्रों की अभिलाषा पूर्ण करने हेतु आवश्यक रूप से एक पत्रिका प्रतिमाह भेजने की कृपा करिए।

□ **प्रधानाध्यापक, प्राथमिक विद्यालय, पारसेन, ग्वालियर, म.प्र.**

हमने गुड़ खाओ

एक दिन मैं उर (और) मेरो बड़ो भैया घर में थे। मेरी बाई घर में नईं थी। उर मेरे दाऊ बी (भी) घर में नई थे। वे खेत में काम कर रहे थे। दाऊ बखर हांक रए थे। उर बाई फर्रे बीन रई थीं।

मेरो बड़ो भैया बोलो, "यार मनमोहन अपने घर की कुटिया में गुड़ धरो है। तू कोई से नै कहे तो अपन दोई खालेएं।"

मैंने बी कई, "खालो भैया मनो मोहे भी मुतको दैयो।"

तई उन्ने कई, "हओ।"

हमने गुड़ निकारो उर खान लगे। अब उते से बाई आ रईं थीं। मैंने दूरई से देख लई।

मैंने भैया से कई, "ये देख तो भैया मोसे जो गुड़ तो खुवा नई रयो। जाहे तुमई खालो।"

तई बे बोले, "हओ।"

उर मैं गुड़ उनकी थरिया में धर के बहार आ गयो। बड़े भैया ने तो बाई हे देखी नई थी। वे तो निरभय होके खा रए थे जैसेई बाई घर आईं मैंने कह दई, "ओ बाई बड़ो भैया घर में गुड़ खा रयो है।"

बाई बोली, "कहां है बो?"

तई मैंने कही, "वो तो देख लो घर में घुसो-घुसो खा रयो है।"

जैसेई बाई घर में गईं मैंने बड़े भैया के डर से कक्कू के घर की गैल धर लई। बाई ने बड़े भैया हे खूब गारी दईं।

वे बोलीं, "नासमिटे कच्छू नई बचन देवे। अबें गुड़-मुड़ बढ़ा गयो तो ओर कहां से लाहें। अब बजार है पूरे चार दिना बाद। चाय-माय काय की बन है। शक्कर बी तो कंटरोल में नईं मिली। काय रे तू रोटी नई खा सकत थो?"

अब भैया की मुइयां उतर गई वे फुसफुसाके बोले, "मैंने अकेले ने थोरू खाओ है बाने बी तो खाओ है।"

तईं बाई बोली, "काय रे तू तो बड़ो है। जब तूने खाओ हुहै तब वो तो खै है।"



ईश्वरसिंह, सातवीं, पीपल्या मंडी, मंदसौर

तब तक तो मैं धीरे-धीरे कक्कू के आंगन से बहार होके सब सुन रयो थो फिर मैं बोलो, "ए बाई सुनो अब तुमई देखो मैंने खाओ होतो तो मैं तुमसे कह देतो।"

तई बाई बोली, "हां रे तू का कम है।"

मैंने मन में सोची मेरी सफाई काम नै आई उर मैं फिर कक्कू के घर चलो गयो।

कक्कूहुन को उर हमारो घर जोरे जोरे (पास-पास) तो थे ही वे हमरी पूरी बातें सुन रए थे। उन्ने मोहे बुलाओ उर बोले, "यार मनमोहन हमें एक चरू पानी तो लान दो।"

मैं सहज भोरे चरू में पानी लेके पोंच गयो तब वे बैलों की सार में खटिया पे बैठे बैठे तमाखू बना रए थे। उन्ने चरू के संग में मेरो हाथ बी पकड़ लयो, उर मुस्काए के बोले, "तूने बी गुड़ खाओ थो सच्ची बता।" तई मैं हिनहिना के बोलो, "कक्कू जी मैंने तो तन्नक सो खाओ है।"

वे बोले, "खइए रामधई।"

तई मैंने बी बचबे के मारे रामधई (रामकसम) खा लई।

वे बोले, "तूने तन्नक सो खाओ होय चाय मुतको सो, खाओ तो है। तू तो बच गयो उर बो उते गारी खा रयो है।"

इत्ती बात केत हुए उन्ने मेरे गाल में एक थप्पड़ मारो। तो हमने गुड़ भी खाओ और थप्पड़ बी।

□ मनमोहन तिलन्थे, दसवीं, तवानगर, होशंगाबाद

आम की खोज

एक समय की बात है। हम लोग आम की खोज करने के लिए बगिया में गए। समय रात के दो बज चुके थे। बगिया में जाकर हम लोगों को कम से कम 80 आम मिले। तब हम लोग अपने-अपने घर आए। सुबह मां ने हमसे पूछा कि इतने सारे पके हुए आम कहां से आए? हमने कहा कि बगिया में से हम आम लाए हैं। तब मां डर गईं और कहने लगी कि इतनी रात को तुम बगिया में गए तुमको डर नहीं लगा। तब हमने मां से कहा कि मैं अकेला नहीं गया था, मेरे साथ रमेश, विनोद, प्रमोद, कन्हैया भी गए थे। मां ने सबको बुलाया और कहने लगी कि रात में तुम सब आम खोजने क्यों गए बगिया में, अब मत जाना। इसलिए कि वहां बहुत बड़ा सांप रहता है। तुम सब को पकड़ लेगा।

यह सब बात बताकर मां भोजन बनाने के लिए चली गईं। तब हम सब बच्चे अपने में बात कर रहे थे कि अबकी बार बगिया में फिर चलें और वहां सांप होगा तो हम सब उसे मार देंगे। हम लोग यह सब बातें कर ही रहे थे कि उसी समय यह सब बातें सुनते हुए पिता जी आ गए और हम लोगों से कहने लगे कि बगिया में मत जाना।

हम लोग उसी रात को हाथ में टार्च और लाठी लेकर बगिया की ओर चल पड़े। वहां जाने पर एक भी सांप का नामो-निशान तक नहीं मिला। तब कन्हैया ने कहा कि गोपाल भैया की मां हम लोगों को डरा रहीं थीं कि हम लोग बगिया में न जाएं। लेकिन ऐसा थोड़े ही होगा। हम लोग आम चुनना छोड़ देंगे? वहां जाकर दनादन आम चुनना शुरू किया। उस दिन भी 80 आम मिला। जब हम सबों के झोले भर गए तो हम सड़क की ओर से अपने घर की ओर आ रहे थे कि एकाएक बहुत-सी रोशनी हम लोग की आंख पर आई। हम लोग डर कर भागने लगे।



नामदेव, आठवीं, इंदौर

डकैतों का डर था। इसलिए कि हमारे गांव में दस रोज़ पहले एक राय जी के घर में डकैती हुई थी। जब हम डर के मारे भाग रहे थे तो वो सब पीछा करने लगे। भागते-भागते अपने घर आए। हम सब इतनी ज़ोर से भागे कि आम का थैला कहां गिर गया कुछ पता नहीं चला।

हम लोग गांव में आकर कहने लगे कि डकैत हमारे गांव के आस-पास आ गए हैं। हमारे गांव के लोग ईंटा-पत्थर लेकर तैयार थे कि डकैत यदि आ जाएंगे तो मुकाबला डट कर होगा। वे लोग हमारे घर के आस-पास आ गए और हम सब को खोजने लगे। सब शैतान लड़के कहां गए?

थोड़ी देर के बाद पता चला कि वो चोर नहीं पुलिस है। तब हम लोग उनके पास गए तो वे कहने लगे कि इतनी रात को तुम बगिया में क्यों गए थे? हम लोगों ने कहा कि आम खोजने के लिए बगिया में गए थे। वो कहने लगे आधी रात को बगिया में मत जाना, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।

दरोगा जी कहने लगे कि यह सब लड़के इतने शैतान हैं कि हम लोग को हैरान कर दिया। दरोगा जी जब गिर पड़े थे और उनके पेट में चोट आ गई थी। तब उन्होंने कहा कि गोली चलाओ, लेकिन अच्छा हुआ कि पुलिस ने गोली नहीं चलाई। तब दरोगा जी ने कहा कि तुमने तो हैरान कर दिया लेकिन ऐसा अब मत करना।

दरोगा जी ने कहा कि तुमने तो खूब दौड़ाया अब ज़रा पानी पिलाओ। तब हमने दरोगा जी को चार ग्लास पानी पिलाया। फिर दरोगा गए दक्षिण दिशा में गश्त करने और हम अपने-अपने घर गए। तब हमारे गांव के लोग कहने लगे कि यह सब लड़के इतना बदमाश हैं कि दरोगा जी को भी परेशान कर दिया। तब हम लोग अपने घर जाकर सो गए।

☐ गोपाल तिवारी, पिरारी, बिहार

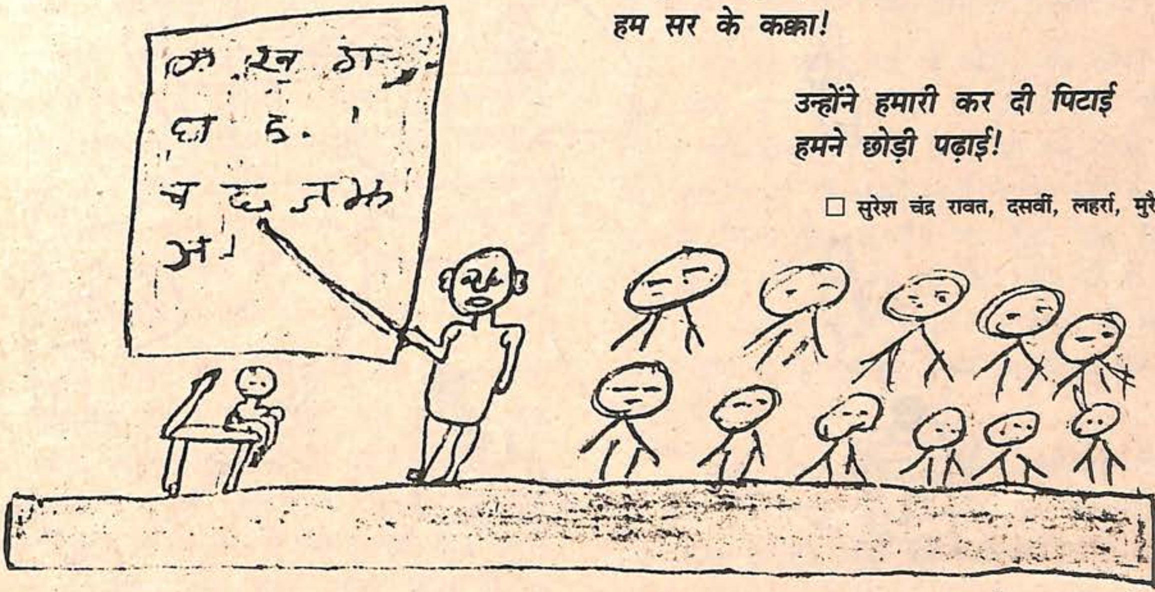
हम सर के कक्का

एक हमारी थी कैलारस में शाला
उसमें हम पढ़ने जाते हैं!
तो उसमें घुग्घू जैसे टीचर
हमें पढ़ना सिखाते हैं!

एक दिन हमारे सर ने
कहा था अ आ
तो हमने कह दिया था
हम सर के कक्का!

उन्होंने हमारी कर दी पिटाई
हमने छोड़ी पढ़ाई!

☐ सुरेश चंद्र रावत, दसवीं, लहर्रा, मुरैना



मोहनलाल, सातवीं

काली को चढ़ा नशा

हमारे गांव में एक दिन एक आदमी ने भांग और दूध डालकर खोआ बनाया। उसने अपनी छोटी बहन को थोड़ा-सा खिला दिया। उसकी बहन का नाम काली था। काली को बहुत अच्छा लगा। काली ने बाद में चुपके से थोड़ा और खा लिया।

काली को नशा चढ़ गया और उसका सिर झूमने लगा। ओझा भगत को बुलाया गया कि काली पर भूत सवार है। भगत ने आकर बताया कि काली को बहुत बड़ा भूत धर लिया है।

काली ने हाथ से इशारा किया कि मैंने खोआ खा लिया है। ओझा ने कहा कि भूत मुर्गा मांग रहा है।

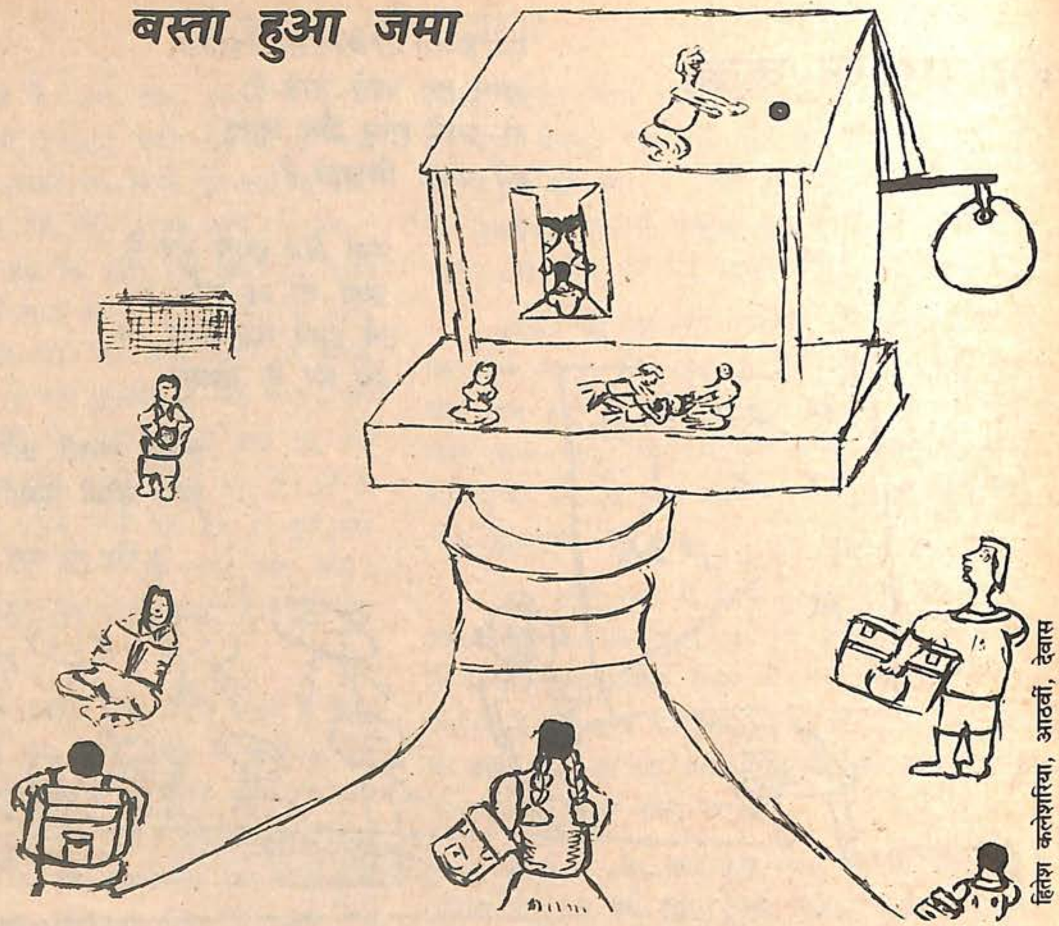
एक ओझा से ठीक नहीं हुआ तो गांव के दो ओझा और बुला लिए गए। ओझा आकर काली को रस्सी से बारी-बारी से मारने लगे। तभी एक समझदार आदमी ने तीनों ओझाओं को भगाया और काली को सुला दिया।

सुबह तक काली का नशा तो उतर गया लेकिन मार का दर्द हो रहा था। उसने बताया कि मैंने भांग खा ली थी।

फिर गांव के लोगों ने मिलकर तीनों ओझाओं को भगा दिया।

☐ धर्मेंद्र कुमार, आठवीं, सरसी, पटना

बस्ता हुआ जमा



हितेश कलेशरिया, आठवीं, देवास

जब मैं पहली कक्षा में पढ़ता था, तो मुझे बहुत डर लगता था।

मेरे पिताजी मुझे पकड़कर स्कूल ले गए, तो मास्साब ने कहा कि, "क्यों रो रहा है?"

तो मुझे और डर लगा। मुझे लगा कि गुरूजी एक लाठी न मार दें, तो मैं चुप हो गया। फिर मैं जो कुछ लिखता था तो गुरूजी को दिखा देता, गुरूजी प्रसन्न होते थे।

जब मैं कक्षा छह में पढ़ने लगा तो मैंने एक लड़के को मार दिया। गुरूजी ने मेरी पिटाई कर दी। मैंने पीरियड गोल कर दिया। फिर गुरूजी ने मेरा बस्ता स्कूल में जमा करवा दिया।

जब मैं स्कूल आया तो मेरा बस्ता नहीं मिला। मैं घबराया, तो एक लड़के ने मुझे बता दिया कि गुरूजी ने तेरा बस्ता जमा कर दिया है।

मैंने सोचा गुरूजी मारेंगे। तो फिर मैंने सोचा चलो मार घल जाएगी तो घल जाएगी। मैं चला गया।

गुरूजी ने पूछा कि, "कहां गए थे?"

मैंने कहा, "मुझे भूख लगी थी तो खाना खाने गया था।" गुरूजी ने कान पकड़कर उठक-बैठक लगवाई और बस्ता दे दिया।

☐ परवत बुनकर, सातवीं

घड़ियों की हड़ताल

शहर में हड़ताल का मौसम था। रेलवालों ने रेलें चलानी बंद कर दी थीं। हज़ारों मुसाफ़िर प्लेटफार्म पर अटके पड़े थे। हर दूसरे पल वे एक-दूसरे से पूछते थे, "हड़ताल खुली क्या?" एक हड़ताल खुलने का नाम नहीं लेती थी कि उससे पहले ही दूसरी हड़ताल का नोटिस आ जाता था।

इधर एक चमत्कार हुआ। खरबूजे को देखकर खरबूजे ने रंग बदला। हड़ताल का मौसम पूरे जोश-ख़रोश से आ पहुंचा था इसलिए शहर की सारी घड़ियों ने भी आपस में राय मिलाई। सबका मत था कि उनको समय के साथ चलना चाहिए। राय मिल जाने के बाद देर कैसे हो सकती थी। सारे शहर की घड़ियां हड़ताल पर चली गईं। समय जहां था, वहीं ठहर गया।

जो मिनिस्टर लोग मीटिंगों में बैठे थे, वहीं बैठे रह गए। एक-दूसरे से समय पूछने लगे तो सबने पाया कि सबकी घड़ियां रुकी पड़ी हैं। तुरंत दरबान बुलाए गए। सही समय की तलाश में दौड़ाए गए। 'सही समय' लेकिन सबके हाथ से निकल गया था। दरबान भी निराश होकर लौटे, सबने आकर ख़बर दी कि सबकी घड़ियां ठहरी खड़ी हैं।

हुक्म हुआ कि घड़ीसाज़ बुलाए जाएं। सरकारी हुक्म सरपट दौड़ा। घड़ीसाज़ दौड़े आए। ख़बर लाए कि उनके यहां भी सारी घड़ियां रुकी खड़ी हैं। शहर के नामी घड़ीसाज़ ने घंटाघर के टॉवर पर चढ़कर पेंडुलम हिलाया—धूप के अंदाज़ से सूई मिलाई और गर्दन ऊंची किए देखता रहा कि सूई आगे सरकती है क्या। सूई जहां-की-तहां डटी थी। ...ज़रा भी सरकने का नाम न लेती थी।

इधर समय ठहर गया था, उधर फैसले ठहर गए थे। मंत्री महोदय एक से दूसरी सभा तक नहीं पहुंच सके। समय के साथ सभाएं रुक गईं। सभाओं के साथ सफ़ाई कर्मचारियों, डॉक्टरों और रेलें चलाने वालों की क़िस्मत जुड़ी थी, वह भी वहीं ठहर गईं।

शहर की घड़ियां ठहरी खड़ी थीं। कर्मचारियों की क़िस्मत रुकी पड़ी थी। मगर गली-कूचों में बच्चों की किलकारियां छूट पड़ीं थीं। सब अपनी खुशी बांट रहे थे। मोटू कह रहा था, "यार, अपनी तो क़िस्मत चमक गई। आज दोपहर तक सोते रहे, किसी ने कान नहीं उमेठा। किसी को हमें जगाने की नहीं सूझी। सोने की ऐसी मौज मिल जाए तो फिर क्या।" मोटू अपने सोए रहने की बात बड़ी शेखी से सुना रहा था मगर मन-ही-मन घड़ियों को दाद दे रहा था। सोच रहा था घड़ियां ऐसे ही रुकी रहें—और अपनी नींद सलामत रहे।

मोटू का दूसरा भाई था खोटू। उसे खेलने का खूब शौक था। वह भी जब से घड़ियां ठहर गईं हैं तब से घंटों खेलता रहा है। किसी को उसे बुलाने की नहीं सूझती। वह भी अपनी खुशी में लोट-पोट हो रहा था और हांफता हुआ बता रहा था, "देख, देख, अपनी क्या लाइफ बनी है। मज़े से खेल जमा रहे हैं। न मम्मी की आवाज़ बुलाती है और न स्कूल की घंटी। घड़ियां खुद तो चुप हुई हीं, अच्छों-अच्छों को भी चुप कर दिया।"

"अबे, ज़्यादा शान मत मार। साले को खेलने का मौक़ा मिल गया तो अब अपनी ही छांटे जा रहा है।" खोटू का एक दोस्त कह रहा था।

"देख दोस्त, अपन फालतू में नहीं छांटते हैं कुछ। ऐसा खेल जमता रहा ना, तो चार दिन बाद



अपनी सेहत भी देख लेना। फिर भी लगे कि केवल छांट रहे हैं तो कुश्ती में उतरकर देख लेना।"

कुश्ती का चैलेंज सामने आते ही खोटू का दोस्त दुबक गया था। मित्रों की यह मंडली फिर खेलने में मस्त हो गई थी। खोटू के और भी बहुत सारे दोस्त ऐसे थे जिनको स्कूल की घंटी से चिढ़ थी। वे सब एक जगह आ मिले। सब मिलकर हनुमान जी को नारियल चढ़ाने की योजना बना रहे थे। मनौती मना लेना चाहते थे कि घड़ियां रुकी रहें, घंटियां बजें नहीं।

यह मंडली घंटी के बजने से इसलिए परेशान थी कि घंटी खेल के रंग में भंग डालती थी। फिर जब घंटी की चोट सुनाई देती थी जो उनको मास्टर जी के डंडे की चोट याद आ जाती थी। घड़ी की सूई और मास्टर जी के डंडे में कोई निकट का रिश्ता था। सूई समय से जितनी आगे खिसकती थी। डंडा उतना ही ज़ोर से पड़ता था। छोटे-बड़े सभी बच्चे इस डंडे से डरने लगे थे। डंडे का डर इस मंडली पर भी ऐसा सवार हो गया था कि स्कूल से दूर भागना ही सबने अपना अधिकार मान लिया था। सारी मंडली इस बात पर एक राय थी कि, "मास्टर जी अगर मारें—तो पढ़ो नहीं।"

घड़ियां जब से रुकी हैं तब से मोटू की नींद सलामत हो गई है और खोटू का खेल पक्का हो गया है। कहीं कोई रोक-टोक नहीं। किसी की दखल नहीं। तीसरे बच्चू बचे छोटूराम। मोटू, खोटू के छोटे भाई। इनको छोटे-छोटे किस्से-कहानियां पढ़ने का शौक है। जब से घड़ियां रुकी हैं तब से अपने घर के एक कोने में दुबके उपन्यास, किस्से-कहानियां पढ़ते रहते हैं। स्कूल की तैयारी का तक़ाज़ा करना मम्मी भूल गई है। खूब मज़े से घंटों तक एक कोने में दुबके पड़े रहते है। न कोई तक़ाज़ा, न कोई डांट-फटकार। किसी को किसी बात की चिंता नहीं।

हर समय ऐसा लगता है जैसे सारा घर थोड़ी देर के लिए बैठकर सुस्ता रहा है। मोटू-खोटू दोनों बाहर हैं इसलिए कोई खटपट नहीं। समय का पता नहीं इसलिए पापा को दफ़्तर की देर का डर नहीं। न नाश्ता बनाने की जल्दी, न लंच-बॉक्स तैयार करने की जल्दी। पापा को भी कोई डर नहीं था कि देर हुई तो साहब बिगड़ेंगे। शहर के दूसरे सारे बाबू लोग भी दफ़्तर की देर के डर से छुटकारा पा चुके थे। शहर शांत था। बसों का इंतज़ार करने वालों की कतारें छोटी हो गई थीं। भगदड़ ग़ायब थी।

सभी दफ़्तरों का, कारखानों का, छोटी फ़ैक्ट्रियों का समय चूंकि ठहर गया था इसलिए कर्मचारियों पर किसी तरह की पाबंदी नहीं रही थी। मिल-मालिक परेशान थे। इस बार कुछ ऐसे फंसे थे कि यह भी नहीं कह सकते थे, 'बड़ा ख़राब टाइम आ गया है।' और न लंबी सांस लेकर कह सकते थे 'समय बड़ा बलवान'। जब समय ही ग़ायब था तो दोष किसे देते।

समय यूं ग़ायब हुआ तो शहर में सहसा समता का राज आ गया था। सच्चा समाजवाद आ गया था। छोटे-बड़े सभी लोग अपने दिनमान की डोर से कट गए थे। भाग्यवाद के फंदे से बच गए थे। बड़े-बड़े भाग्यवादी छकड़ी भूल गए थे। भविष्य बेचनेवालों का कारोबार ठप्प था। दिनमानी दूकानें बंद थीं। मीन-मेख का अंतर भी मिट गया था।





उधर समय के यूं गायब हो जाने से अफ़सरों, मैनेजरों व मिल-मालिकों की हालत अजीब हो गई थी। एक बड़ी कंपनी के मैनेजर साहब को घड़ी की अलार्म से उठने की आदत थी। घड़ियां सब ठहरी खड़ी थीं, इसलिए विचारों की नींद भी जाने कब टूटती थी—कोई पता ही नहीं था। दूसरे कई बड़े अफ़सर जो सिर्फ़ अपनी टाइम की पाबंदी के कारण तरक्की पाते रहे हैं वे भी अब भन्नाए फिरते हैं। होंठ काटते हैं, मुट्ठियां बंद करते हैं, दांत पीसते हैं लेकिन घड़ियां बंद-की-बंद खड़ी हैं। साहब की टाइम की पाबंदी का रौब-दाब उतर चुका है। उनको भी होश-हवास नहीं कि दफ़्तर के 'अपाइंटमेंट' क्या हैं—कहां हैं?

जब से समय यूं नदारद हुआ है—सरकार उदार हो गई है। अफ़सर उदार हो गए हैं। सबको एक-दूसरे की तकलीफ का थोड़ा ख़्याल आया है। इसीलिए सभी मालिकों, अफ़सरों और सरकार की उदार सलाह से बाकी सारी हड़तालें समाप्त हो गई हैं।

घड़ियों की हड़ताल मगर अटूट है। सारी घड़ियां ठहरी खड़ी हैं। सरकार को समझ नहीं आ रहा है कि समय की एकता का राज क्या है?

सभी परेशान थे। मगर समय की खोजबीन में इस बार सभी जुट गए थे। पंडित लोग, प्रोफ़ेसर लोग, वैज्ञानिक लोग, दिनमानी-दूकानों के ज्योतिषी लोग और सौदा-सूत करने वाले सभी व्यापारी लोग भी। इस प्रकार सरकार अब अकेली नहीं रह गई थी। जनता का साथ मिला तो कई अच्छे सुझाव भी सामने आए। एक सुझाव 'घड़ीसाज़ों की कमेटी' का था।

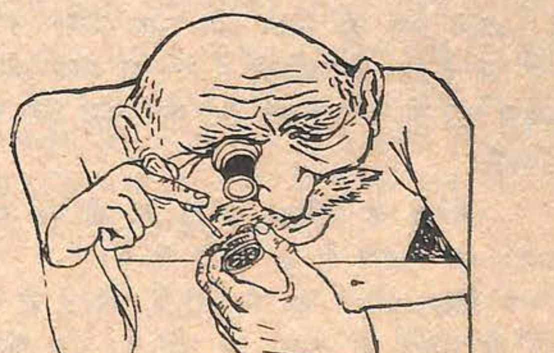
सुझाव था कि, "सारे देश के घड़ीसाज़ों की एक राष्ट्रीय कमेटी बनाई जाए। इसी कमेटी को घड़ियों की हड़ताल का कारण तलाशने का काम सौंपा जाए।" सुझाव सभी मंत्रियों व अफ़सरों को अच्छा लगा था। सबने अपनी सहमति दे दी थी। सारे देश के नामी घड़ीसाज़ों के नाम आदेश जारी कर दिए गए थे, "तुरंत राजधानी पहुंचो।"

सरकारी हुक्म पाते ही सभी नामी घड़ीसाज़ दिल्ली दौड़ आए।

समिति की सारी बैठकों के प्रबंध हो चुके थे घड़ीसाज़ों से कहा गया था कि, "वे घड़ियों की हड़ताल का कारण तलाशें। अपने-अपने घरों में सुधरने आई मरीज़ घड़ियों के बीच कभी किसी ने कोई कानाफूसी सुनी हो बताएं।" सभी घड़ीसाज़ों से यह कहा गया कि, "वे किसी भी तरह पीछे छूट गए समय को लौटा लाने में सरकार की भरपूर मदद करें।" सबसे अपने अलग-अलग बयान मांगे गए थे।

खैरागढ़ के घड़ीसाज़ कीबारी आई—उसे बुलाया गया।

खैरागढ़ का घड़ीसाज़ नवाब साहब का ख़ास घड़ीसाज़ है। नवाब साहब से ही उसे इतना पैसा मिल जाता है कि उसका और उसके छोटे परिवार का खर्च



चल जाए। इसीलिए वह सारे शहर की घड़ियां मुफ़्त में ठीक करता है। कभी किसी से कोई मेहनताना नहीं लेता। हर आदमी के हाथ पर बंधी घड़ी उसे अपना हमदम मानती है। हर आदमी को उस पर पूरा भरोसा है।

कारण बहुत साफ़ है। खैरागढ़ का यह घड़ीसाज़ पिछले पचास वर्षों से इस शहर की घड़ियां सुधारता है। जब भी कोई आदमी नई घड़ी खरीदता है, इसकी राय कभी ग़लत नहीं जाती और यही कारण है कि इस क़स्बे में कोई भी आदमी घड़ियों के मामले में आज तक कभी ठगा नहीं गया। हर हाथ पर बंधी घड़ी, हर घर में या दफ़्तर में टंगी घड़ी हमेशा सही समय बताती है।

बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है। इस घड़ीसाज़ का पूरा परिवार इस काम को अपना पवित्र कर्तव्य समझकर करता रहा है। घर में पत्नी तथा दो बेटे हैं। सभी मेहनती और काम के जानकार। सबने अपना काम बांट लिया है। सभी परोपकार और पूजा की भावना से काम करते हैं। उसकी बूढ़ी पत्नी खैरागढ़ की सभी मस्ज़िदों तथा धर्मशालाओं की घड़ियां सुधारती-संवारती है। बूढ़े



घड़ीसाज़ की बूढ़ी पत्नी मंदिर-मस्ज़िद में कोई भेद नहीं समझती। सभी धार्मिक स्थानों को वह समान रूप से पवित्र समझती है। वह समय को धर्म-निरपेक्ष मानती है। अपनी बात का सीधा और सरल प्रमाण उसके पास यह है कि मंदिर-मस्ज़िद में टंगी दो अलग-अलग घड़ियां एक ही समय बताती हैं—कभी कोई फ़र्क नहीं दिखातीं।

खैरागढ़ के घड़ीसाज़ के दो बेटे भी यही काम उसके पास बचपन से ही सीखते रहे हैं।

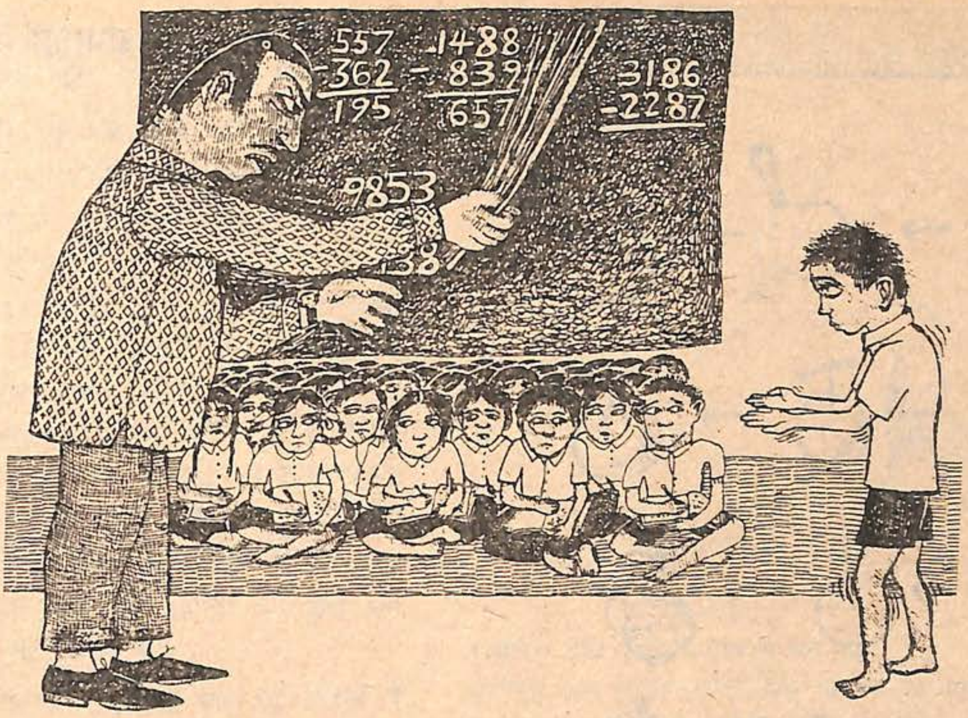
लेकिन घड़ियां जब से रुकी हैं, तब से ही जैसे इस पूरे परिवार पर आफ़त टूट पड़ी है। सारा परिवार एक-एक घड़ी का एक-एक पुर्ज़ा परखने-देखने में लगा रहा—मगर घड़ियों के बंद होने का कारण समझ में नहीं आया। घड़ीसाज़ों का यह पूरा परिवार भी नहीं जान सका कि सारी घड़ियां एक साथ क्यूं रुकीं? सब की समझ जैसे मात खा गई है। लेकिन अब भी पूरा परिवार कारण की तलाश में जुटा हुआ है।

एक दिन उस घड़ीसाज़ के दोनों बेटे स्कूल से दौड़े आए तथा घड़ियों के बंद होने का कारण ढूंढ लाए। घड़ीसाज़ को ऐसी खुशी हुई, जैसे अंधे को आंखें मिली हों।

घड़ीसाज़ बता रहा था : ''कारण तो मैं खुद ढूंढ रहा था सरकार। मैं भी उतना ही हैरान था, लेकिन अब जो कारण मेरे दो लड़कों ने खोज निकाला है, पर वह सरकार की समझ से बाहर की चीज़ है। न पूछें तो ही अच्छा है।''

सरकारी अफ़सर ने तुरंत रौब से कहा, ''तुम बताओ, तुम्हें सभी कुछ माफ़ है।''

खैरागढ़ के अनुभवी घड़ीसाज़ को सरकारी अफ़सर का यह 'तुम-हम' अच्छा नहीं लगा लेकिन वह करता भी क्या? वह बता रहा था : ''साहब, घड़ियां तो आदमी ने बनाई हैं। अपनी सुविधा के लिए बनाई हैं। आज ऑटोमेटिक घड़ियां भी चल पड़ी हैं और इलेक्ट्रिक घड़ियां भी। लेकिन कोई ज़माना था जब या तो धूप-घड़ियां थीं या धूल-घड़ियां ही। जो भी हो, आदमी को समय के अंदाज़ की ज़रूरत थी। सिर्फ़ अंदाज़ की ही नहीं, सरकार उसे समय की क़ीमत पहचानने की ज़रूरत थी। उसको समय के सही उपयोग की ज़रूरत थी और उसने अपनी सुविधा के लिए घड़ियां बना लीं। घड़ियों का काम उसकी सुविधा के लिए उसे सहयोग देना था, लेकिन... लेकिन बात कुछ बिगड़ती जा रही है सरकार। मेरे लड़के बता रहे थे कि खैरागढ़ के सारे स्कूलों की घड़ियां पीछे रहा करती हैं। वे स्कूलों की घड़ियों पर हमेशा अपनी नज़र रखते रहे हैं। उन्होंने देखा है वे घड़ियां तभी पीछे रहती हैं जब किसी बच्चे को डंडे पड़ते हैं। वे बताते हैं कि सभी स्कूलों में ज़रा भी देर से आने वाले लड़कों की लाइन अलग लगा करती है। यह लेटलतीफ़ों की लाइन कहलाती है। जब तक प्रार्थना होती है, तब तक मास्टरों की आंखें इन लेटलतीफ़ों की खबर लेने को तकती रहती हैं। बच्चों को नफ़रत से देखती ये आंखें सिर्फ़ उस अवसर का इंतज़ार करती हैं जो बच्चों को सज़ा देने के लिए होता है। प्रार्थना के बाद इन 'लेटलतीफ़ों' को



जितने मिनट की देर हो उतने ही डंडे खाने पड़ते हैं। जब इनको डंडे पड़ रहे होते हैं तब तक स्कूल की सभी घड़ियां रुकी रहती हैं। इसके अलावा भी जब-जब इन मासूम बच्चों को पीटा जाता है तब-तब घड़ियां ठिठककर रुक जाती हैं। आपको यह जानकर हैरत होगी कि यह सिलसिला एक अर्से से चलता रहा है मगर अब लगता है कि यह सब घड़ियों की बरदाश्त करने की ताकत से बाहर की बात हो गई है। इसीलिए वे ठहर गई हैं। सज़ा और समय का मेल घड़ियों को मंजूर नहीं लगता। फिर सज़ा भी मासूम बच्चों को। घड़ियां इसे नहीं सह सकी हैं।''

खैरागढ़ का घड़ीसाज़ एक लंबी सांस लेकर रुक गया था। उसने पानी पीना चाहा था—उसे पान की भी तलब हो आई थी। सरकारी दफ़्तर का चपरासी दौड़कर पानी लाया था। दूसरा चपरासी पान लेने दौड़ा था। पानी पीकर खैरागढ़ के घड़ीसाज़ ने अपनी बात आगे बढ़ाई। वह कह रहा था :

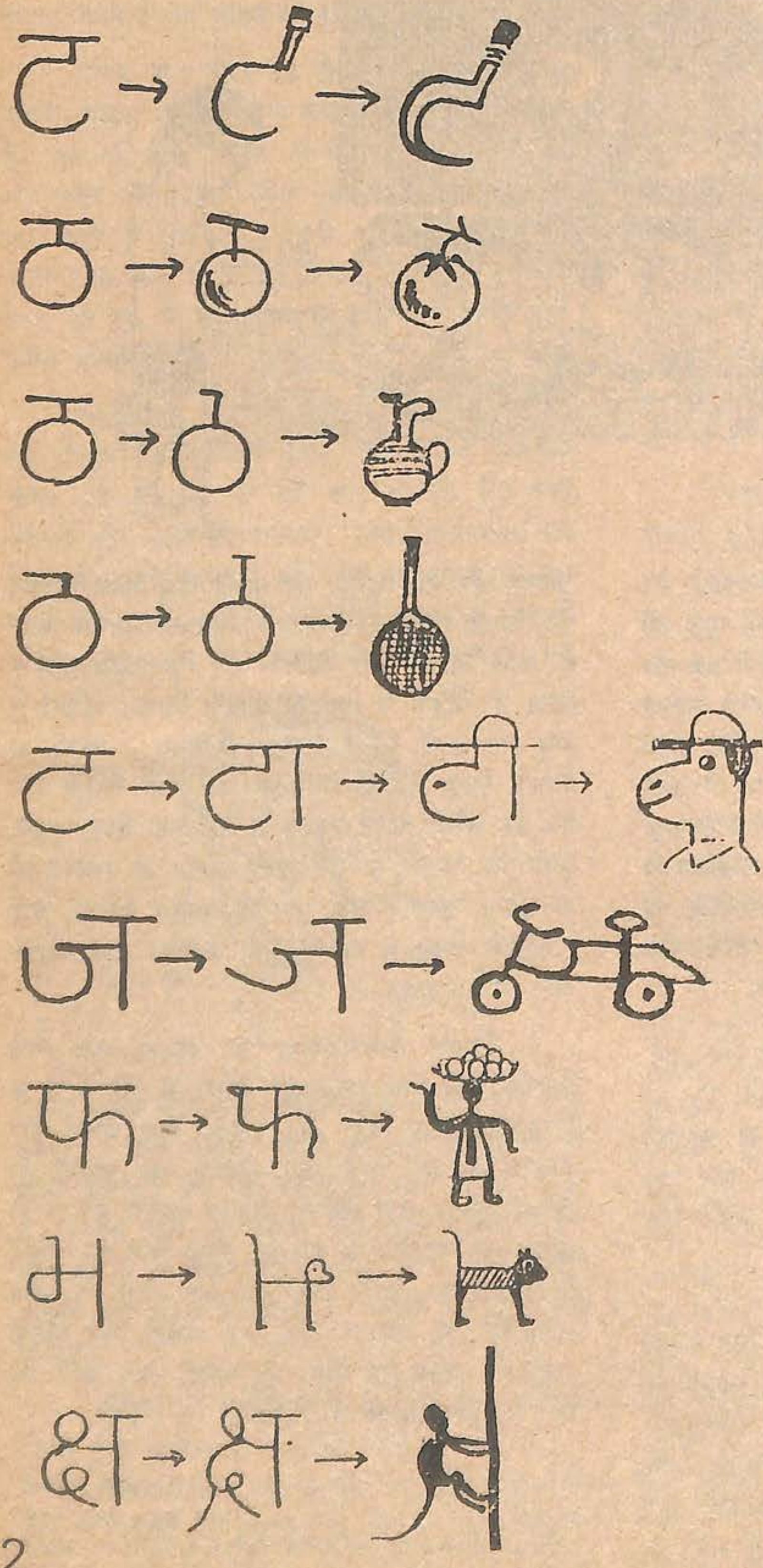
''घड़ियां बच्चों पर सवार हो जाएंगी—ऐसा किसने सोचा था सरकार? बच्चे भी अगर फ़ौजी आदमी की तरह समय पाबंद हो जाएंगे तो बच्चे क्यूं कहलाएंगे? बच्चे केवल बच्चे ही बने रहें इसके लिए तो उनको समय के इस आतंक से बचाना ही होगा सरकार। ऐसा भी किसने सोचा था कि समय बच्चों पर यूं सवार हो जाएगा और सारी दुनिया की कच्ची पौध समय से इस तरह डरती रहेगी? यह बात तो सरकार आपके ध्यान में आनी चाहिए थी, लेकिन जब ऐसा होता ही ना दिखा तो घड़ियों ने खुद ही फ़ैसला किया। घड़ियों ने अब सारे बच्चों की हंसी-खुशी के लिए न चलने का फैसला किया है। वे तब तब तक नहीं चलेंगी जब तक कि फ़ौजी कानून स्कूलों से नहीं हटा लिए जाएंगे, बच्चों पर समय को इस क़दर क्रूरता से सवार नहीं होने दिया जाएगा। अब आप ही बताइए सरकार, ऐसी बात कैसे समझ में आएगी आप सबको? कैसे बदलेंगे आप अपना रुख़?''

खैरागढ़ के घड़ीसाज़ का सवाल एक लंबी सिफ़ारिश के साथ एक बड़ी कमेटी में पूछे जाने के लिए भेज दिया गया था। उसका सारा बयान एक अफ़सर ने दर्ज किया था। खैरागढ़ की घड़ियों का फैसला सुनकर सभी सरकारी अफ़सर चकित थे। उन्होंने तुरंत शिक्षा मंत्रालय के नाम एक चिट्ठी भेजी कि घड़ियों के फैसले पर विचार करने के लिए देश के नामी शिक्षाविदों को बुलाया जाए, एक कमेटी फिर बिठाई जाए और बच्चों पर समय की पाबंदी लागू करने की बात पर फिर विचार किया जाए।

☐ रमेश थानवी

सभी चित्र : कैरन हेडाक

(लेखक के सौजन्य से उनके बाल उपन्यास 'घड़ियों की हड़ताल' का एक हिस्सा।)



पिछले अंकों में तुमने अपनी बारहखड़ी के कुछ अक्षरों में विभिन्न आकृतियां ढूंढने की कोशिश की होगी। तुमने सोचा होगा, अरे इतनी मज़ेदार बात हमें पता ही नहीं थी। खैर... इसी क्रम को आगे बढ़ाते हैं।

कल्पना : विष्णु चिंचालकर
चित्र : अविनाश देशपांडे

चित्रकला के इतिहास से...



(ऊपर) फ्रांस की एक गुफा में बना सांड।
(नीचे) ऊनी मोमथ। हाथी जैसा यह जानवर आज से दस हज़ार साल पहले तक पृथ्वी पर पाया जाता था। इसके चित्र भी गुफाओं की दीवार पर मिले हैं।

आज से लगभग सौ वर्ष पहले की बात है। उन दिनों सबसे पुराने समय के मानवों के बारे में खोज हो रही थी। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में, गुफाओं में खुदाई करने से इस बात के सबूत मिले थे कि सबसे पुराने मानव गुफाओं में ही रहते थे। वे पत्थर के औज़ार बनाते थे और जानवरों का शिकार करके खाते थे। यह हज़ारों साल पहले की बात है। उन्हें '**गुफा मानव**' कहा जाने लगा। लोग सोचते थे कि गुफा मानव का सारा समय जानवरों की तरह बीतता था—शिकार करना, उसे खाना और सो जाना। फिर वही क्रम! बस! लोग यह भी सोचते थे कि गुफा मानव में बहुत कम बुद्धि थी, इसलिए वह कुछ और सोच या कर ही नहीं पाता था।

ऐसे में स्पेन की एक बारह साल की लड़की ने जो खोज की, उससे लोगों का उक्त विचार बिलकुल ग़लत साबित हुआ। मारिया नाम की यह लड़की एक बड़े ज़मींदार की बेटी थी। मारिया के पिता को गुफा मानव के बारे में जानने की बड़ी जिज्ञासा थी। उनके गांव के पास एक बहुत बड़ी गुफा थी। उस गुफा में उन्हें मानव की हड्डियां और पत्थर के औजार मिले थे। मारिया के पिता पिछले कई वर्षों से इनका अध्ययन कर रहे थे।

एक दिन मारिया ने ज़िद पकड़ ली कि वह भी गुफा देखने जाएगी। पिता ने लाख मना किया। तरह-तरह से डराया—नहीं वहां बहुत अंधेरा है, सांप-बिच्छु होंगे, गुफा में भटक जाओगी तो मिलना मुश्किल हो जाएगा। पर मारिया ने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी। आख़िरकार उसके पिता को उसे साथ ले ही जाना पड़ा।

गुफा में बहुत अंधेरा था। उजाले के लिए बस एक लालटेन भर साथ में थी। मारिया के पिता गुफा की ज़मीन पर से खुरच-खुरच कर हड्डियां बीन रहे थे। मारिया आसपास घूम रही थी। मारिया उबने लगी। मगर पिता से कैसे कहे, वे नाराज़ हो जाएंगे। मारिया थककर एक जगह लेट गई। कुछ देर बाद उसकी नज़र छत पर गई तो उसने रंग-बिरंगे जानवर देखे। उसने सोचा कहीं मैं सपना तो नहीं देख रही हूं। उसने अपनी आंखें मसलीं। नहीं, वह तो जाग रही थी। मारिया चिल्ला उठी—पापा, पापा देखो कितने सारे चित्र!



फ्रांस की लास्काऊ गुफा की दीवार पर बैल, घोड़े, भैंस और हिरणों के चित्र।



फ्रांस *की एक गुफा की दीवार पर दौड़ते घोड़े का चित्र।*

भैंसों के चित्र! पर उसके पिता तो हड्डियां खोदने में मग्न थे। उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया और कहा, हां, हां अंधेरे में ऐसा ही दिखता है। मगर मारिया उन्हें खींच लाई और चित्रों से भरी गुफा की छत दिखाई। पिताजी दंग रह गए। इतने बड़े, इतने सुंदर, रंगीन चित्र। ऐसे लग रहा था मानो जीते-जागते जानवरों का कारवां (झुंड) कहीं जा रहा है।

वास्तव में यह मारिया की खोज थी। जिस गुफा मानव को सब मंद बुद्धि का मानते थे, उन्होंने ऐसे अद्भुत चित्र बनाए! और वह भी आज से कोई पंद्रह-बीस हज़ार वर्ष पहले! यह कैसा चमत्कार है। शुरू में तो लोगों ने इस बात को मानने से इंकार कर दिया कि ये चित्र गुफा मानव के बनाए हैं। मगर धीरे-धीरे बहुत से और ऐसे चित्र मिले और सबको यह स्वीकार करना पड़ा। अब गुफा मानव के बारे में लोगों के विचार भी बदल गए हैं। गुफा मानव जंगली, बुद्धिहीन नहीं बल्कि सृजनात्मक कलाप्रेमी मनुष्य था। जिसने अपने आसपास की दुनिया को बारीकी से देखा। उसने जानवरों को चलते, रुकते, बैठते, दौड़ते और तीरों का शिकार होकर मरते देखा और फिर हू ब हू उनके चित्र बनाए।



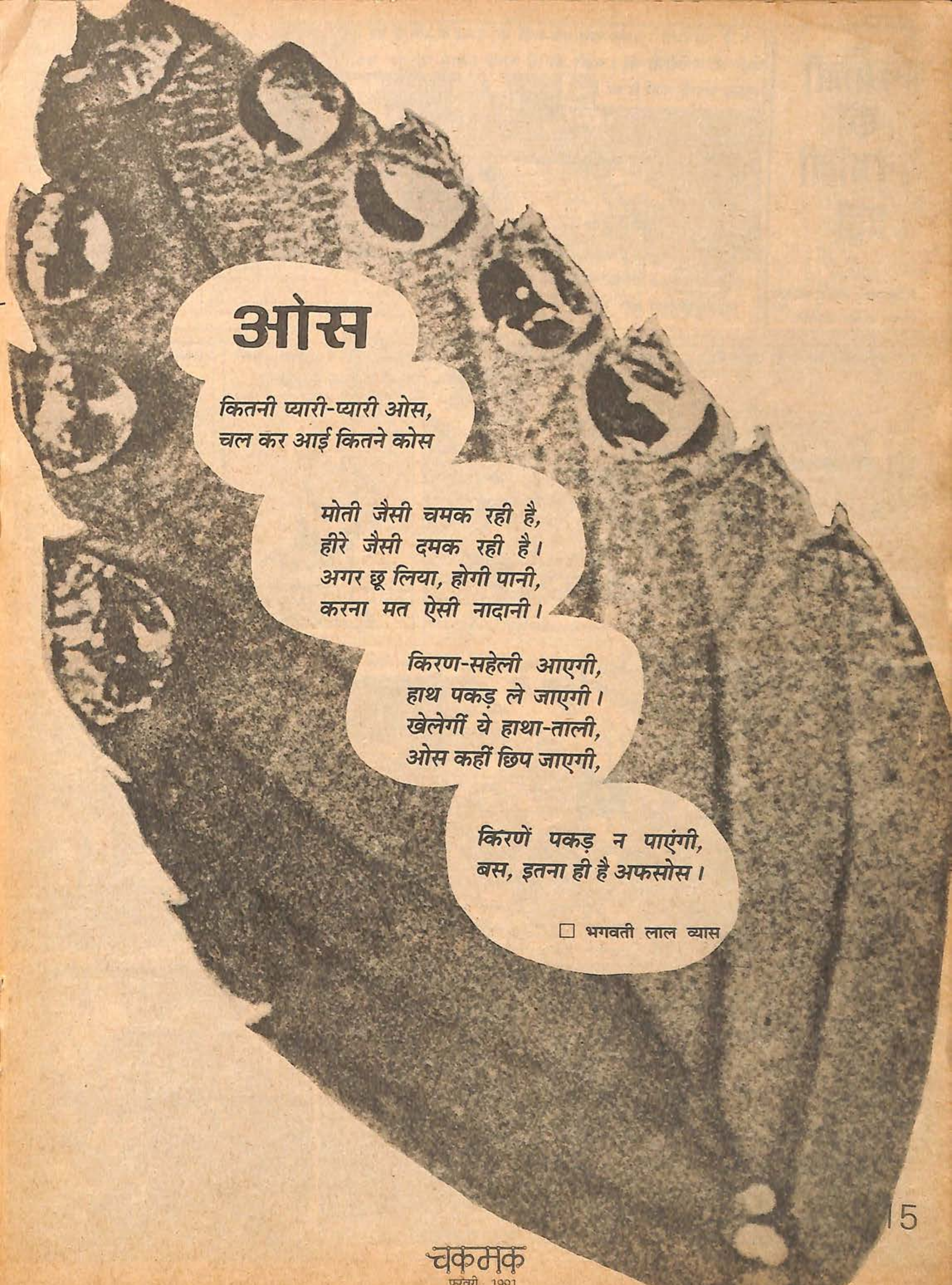
मारिया *ने गुफा में भैंसों के इसी तरह के चित्र देखे थे।*

हू ब हू जानवरों के चित्र बनाना, यूरोप के प्राचीन गुफा मानव की विशेषता थी। जैसा जानवर दिखा, उसने जो प्रभाव और छाप गुफा मानव पर छोड़ी गुफा मानव ने बिल्कुल वैसा ही चित्रित करने की कोशिश की। इस तरह के चित्रण को **यथार्थवादी चित्रण** (यथा यानी जैसा है वैसा) या छापवादी चित्रण कहते हैं।

बेशक इन चित्रों से यह तो साबित हो गया कि हज़ारों साल पहले का गुफा मानव बुद्धि और कलाकारी में हमसे कम नहीं था। लेकिन इसके साथ ही कई अन्य प्रश्न खड़े हो गए। जंगली जानवरों का शिकार करके पेट भरने वाले ये लोग (जिनका बाकी समय भी जानवरों का पीछा करने में बीतता था) आख़िर गुफाओं की दीवार पर चित्र क्यों बनाते थे? क्या वे दीवारों को सजाते थे? या इन चित्रों का संबंध उनकी धार्मिक मान्यताओं से था? कहीं ये चित्र उनके विचारों को व्यक्त करने का तरीका तो नहीं थे? कहीं...

इन सब प्रश्नों पर अगले अंकों में विस्तार से बात करेंगे। तब तक तुम भी सोचो।

□ **सी.एन. सुब्रह्मण्यम**



ओस

कितनी प्यारी-प्यारी ओस,
चल कर आई कितने कोस

मोती जैसी चमक रही है,
हीरे जैसी दमक रही है।
अगर छू लिया, होगी पानी,
करना मत ऐसी नादानी।

किरण-सहेली आएगी,
हाथ पकड़ ले जाएगी।
खेलेगीं ये हाथा-ताली,
ओस कहीं छिप जाएगी,

किरणें पकड़ न पाएंगी,
बस, इतना ही है अफसोस।

☐ भगवती लाल व्यास

मनमौजी की मनमौजी घड़ी

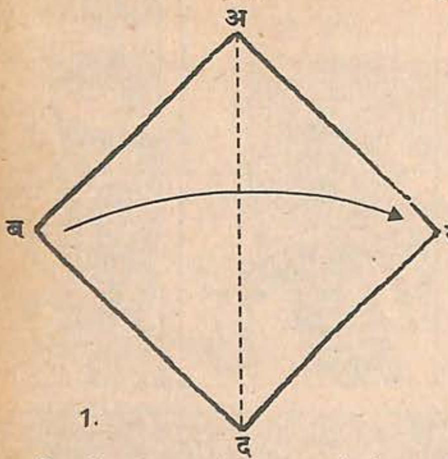
चित्रकथा : शिवेंद्र पांडिया
शब्द : राजेश उत्साही





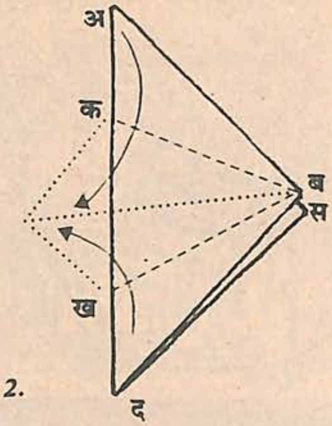
चोर ने सारा कीमती सामान बोरी में भरा
और चलने को हुआ .....तभी उसकी नज़र घड़ी पर पड़ी....
मनमौजी खर्राटे भर रहे थे .....
चोर ने घड़ी उठाई .....
बस तभी घड़ी घनघना उठी ...
तब तक मनमौजी भी जाग गए ....
घूँसा
लात
ढिशुम
मुक्का
और फिर चोर को पकड़ने के लिए उन्हें शाबासी मिली।
मनमौजी ने अपनी घड़ी को प्यार किया।

मछली बनाओ



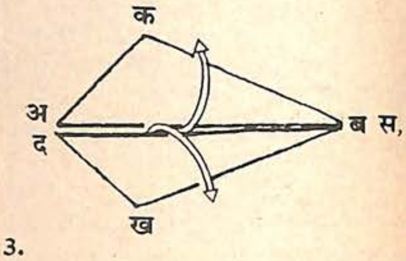
1.

जितनी बड़ी मछली बनाना चाहते हो, उस अनुपात से कागज़ का वर्गाकार टुकड़ा लो। सुविधा के लिए चारों कोनों को नामांकित कर लो। अब **ब स** कोनों को मिलाते हुए कागज़ को बीच से मोड़ो।



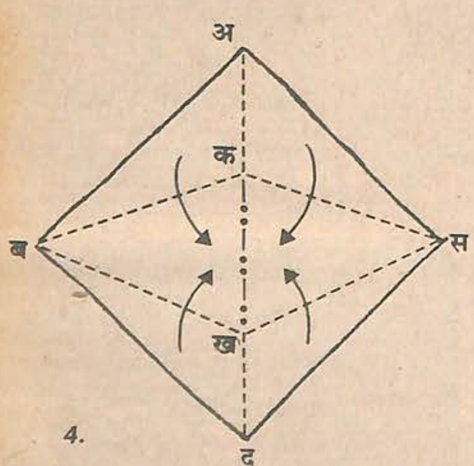
2.

अ और **द** कोनों को चित्रानुसार मोड़ो।



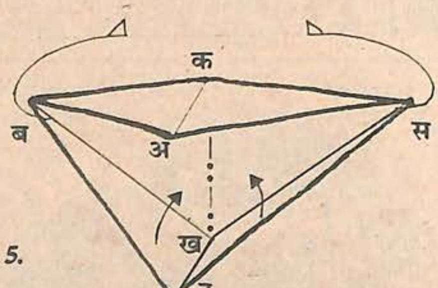
3.

यह ध्यान रखो कि इस तरह मोड़ने पर जो त्रिभुज बनें, उनमें **द ख स**, **अ क ब** से छोटा हो। सभी मोड़ो को अंगूठे से रगड़कर पक्का कर दो।



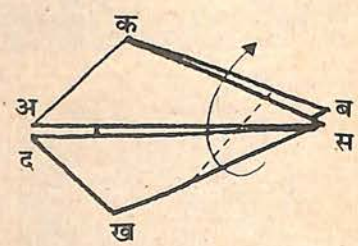
4.

अब कागज़ को फैलाओ और **ब क स** तथा **ब ख स** रेखाओं पर से कागज़ को अंदर की तरफ ऐसे मोड़ो कि **अ** और **द** सिरे बीच में आ जाएं।



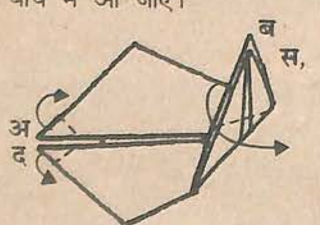
5.

इस तरह जो आकृति बने उसमें **ब** और **स** कोनों को पीछे की तरफ मोड़कर पास ले आओ।



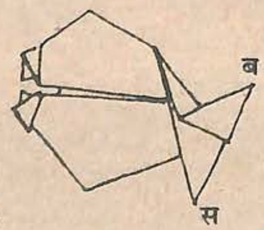
6.

ब स सिरों को चित्र में दिखाए तरीके से ऊपर की तरफ मोड़ो।



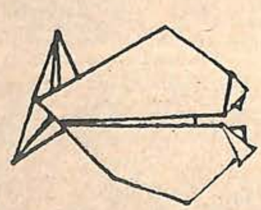
7.

स सिरे को बीच से आधा मोड़ते हुए नीचे ले आओ। **अ द** सिरों को थोड़ा-थोड़ा अंदर की तरफ मोड़ दो।



8.

मछली तैयार, चाहे ऐसे रखो....



9.

चाहे ऐसे... ।



हुदहुद

इस सुंदर पक्षी का शरीर बादामी रंग का होता है, और पंखों पीठ तथा पूंछ पर काली और सफ़ेद धारियां होती हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसके सिर पर पाया जाने वाला तुर्रा है जिसे यह पंखे की तरह खोल और बंद कर सकता है। इसकी काली चोंच लंबी और कुछ मुड़ी हुई होती है। मैना के आकार का यह पक्षी पूरे भारत में और भारत के बाहर एशिया और यूरोप में पाया जाता है। नर और मादा समान दिखते हैं। बहुत से लोग इसे ही कठफोड़वा समझ लेते हैं। कठफोड़वा के बारे में तुम पढ़ चुके हो, देखो क्या अंतर है!

हुदहुद का एक मात्र भोजन कीड़े और इल्लियां हैं, और इसीलिए यह भोजन की तलाश में ज़मीन पर अधिक समय बिताता है। अपनी लंबी और नुकीली चोंच की सहायता से यह छोटे-छोटे कीड़ों को भी आसानी से पकड़ सकता है। कीड़े चुनते समय यह अपना तुर्रा बंद रखता है और थोड़ी आहट होते ही उड़ कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाता है। फ़सलों को हानि पहुंचाने वाले कीड़ों को नष्ट करने वाला यह पक्षी किसानों का एक अच्छा मित्र है।

हुदहुद बोलते समय लगातार तीन बार हुप-हुप-हुप की आवाज़ करता है, जिसके कारण अंग्रेजी में इसे **हूपू** कहते हैं। **हुदहुद** नाम भी इसी आवाज़ के कारण पड़ा है।

इसराइल देश के निवासी हुदहुद को एक पवित्र पक्षी मानते हैं। क्योंकि उनकी मान्यता है कि प्राचीन काल में उस देश के बादशाह सुलेमान ने इसे वरदान दिया था। इसकी कहानी बहुत रोचक है। कहते हैं, बादशाह सुलेमान अपने जादुई उड़नखटोले पर बैठ कर कहीं जा रहे थे। जब उन्हें धूप से परेशानी होने लगी तब कई हुदहुदों ने उनके सर पर पंख फैलाकर उन्हें छाया दी। बादशाह ने प्रसन्न होकर हुदहुदों के सरदार को वरदान देना चाहा।

सरदार ने कहा, "आज से सब हुदहुदों के सर पर सोने का ताज हो।"

बादशाह ने सरदार को बहुतेरा समझाया कि वह ऐसा ख़तरनाक वरदान न मांगे, किंतु वह अपनी मांग पर अड़ा रहा। आख़िर सुलेमान को उसकी बात माननी ही पड़ी। किंतु जल्दी ही सोने का यह ताज हुदहुदों के विनाश का कारण बनने लगा। मनुष्य ने सोने के लालच में इन पक्षियों का अंधाधुंध शिकार करना शुरू कर दिया और हुदहुदों का वंश समाप्त होने का ख़तरा पैदा हो गया। आख़िर हुदहुदों का सरदार फिर से बादशाह सुलेमान के पास पहुंचा और उन्हें अपनी दर्द भरी कहानी सुनाई। बादशाह बोले, "इसीलिए मैंने तुम्हें सोने का ताज मांगने से मना किया था। ख़ैर आज से सब हुदहुदों के सर पर सोने के स्थान पर सुंदर परों का ताज होगा।" तभी से हुदहुद के सिर पर सुंदर तुर्रा पाया जाता है। पर यह तो एक प्रचलित कहानी भर है वास्तव में ऐसा हुआ होगा, कहना मुश्किल है।

हुदहुद का प्रजनन काल फ़रवरी से मई तक होता है। किसी पेड़ के खोखले तने में या किसी दीवार के छेद में तिनके चीथड़े और कूड़ा करकट बेतरतीब ढंग से रखकर ये पक्षी अपना घोंसला बनाते हैं। मादा 5 या 6 सफ़ेद अंडे देती है। जहां अन्य पक्षी अपने घोंसलों को साफ़ सुथरा रखते हैं वहीं हुदहुद जैसे सुंदर पक्षी का घोंसला इतना गंदा और बदबूदार होता है कि उसके पास जाना भी मुश्किल होता है। सोचो ऐसा क्यों?

□ अरविंद गुप्ते

(चित्र सौजन्य : बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)



हो

होली को सब क्यूं कहते हैं रंगों का त्यौहार
गिनती के छः सात रंग ही दिखते हैं हर बार ।

काले, पीले, हरे, बैंगनी, नील, गुलाबी, लाल
इन्हें छोड़कर किसी रंग के बिकते नहीं गुलाल ।

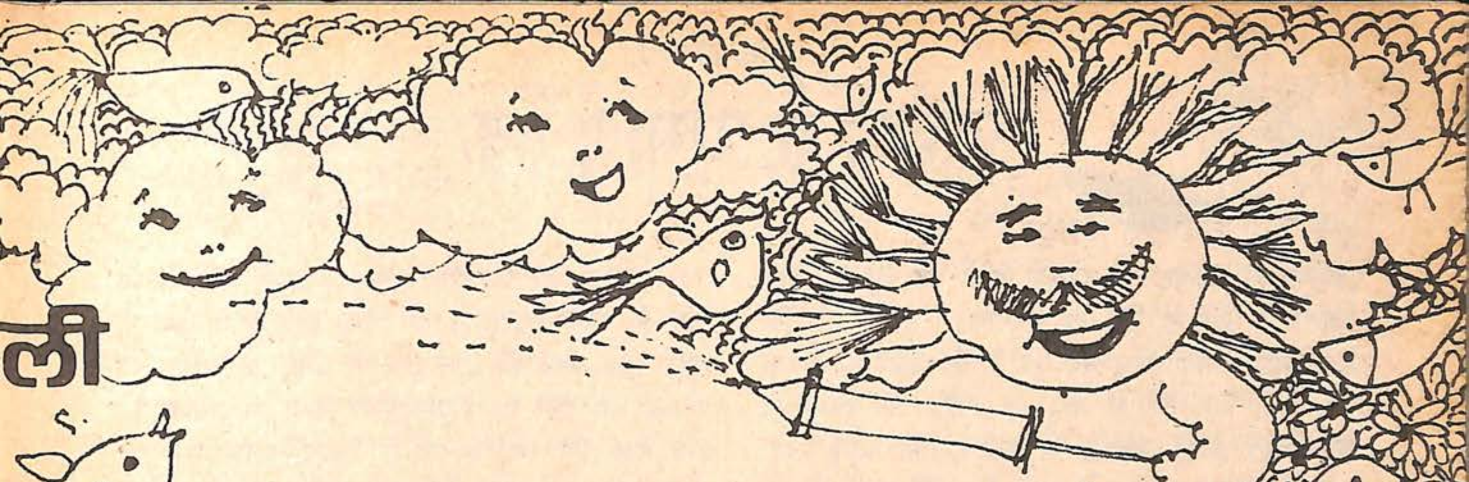
हमसे पूछो तो होली है बेरंगा त्यौहार
उस से ज़्यादा रंगीं होता सब्ज़ी का बाज़ार ।

अदरक, लस्सन, नींबू, बैंगन, शलजम और चुकंदर
प्याज़, टमाटर, गोभी, मेथी, हर दुकान के अंदर ।

फूलों के रंगों की गिनती करने बैठो आज
हफ़्ते भर तक गिनने पर भी ख़तम न होगा काज ।

कोई सलेटी, कोई बदामी, सिंदूरी, उन्नाबी
कोई दूधिया, कोई सुनहरा, ख़ाकी या नारंगी ।

ली



कोई बसंती, कोई नींबुई, कोई मोतिया होता
कोई फ़िरोज़ी, कोई भगवा, कोई गेरुआ होता ।

फूल रुपहले और सफ़ेद और अस्मानी होते हैं
ऊदे, भूरे, तरबूज़ी और सरसोंई होते हैं ।

चिड़ियों, कीड़ों, जानवरों के रंग अगर गिनवायें
जीवन भर बस बैठे-बैठे उनको गिनते जायें ।

आंख खोलकर अगर कोई दुनिया को देखने पाये
होली का भरपूर मज़ा हर रोज़ उसे मिल जाये ।

सुबह सवेरे रंगीं कपड़े पहनके बादल आयें
चिड़ियां रंगीं पर फैलाये ऊपर-नीचे जायें ।

फूलों के संग करें तितलियां दिन भर हंसी ठिठोली
रोज़ शाम को सूरज खेले आसमान से होली ।



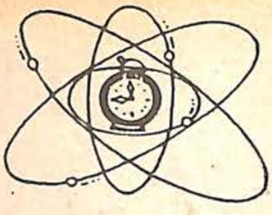
□ सफ़दर हाशमी
चित्र : आशा शर्मा
('सहमत' के सौजन्य से)





समय की माप

परछाईं से परमाणु तक



घड़ियों की हड़ताल की कहानी तुमने पढ़ ही ली होगी, (अगर न पढ़ी हो तो अब पढ़ लो)। तुमने देखा कि अगर घड़ी अपना काम बंद कर दें, तो कैसी आपाधापी मच जाती है। कम से कम उन लोगों का जीवन तो अस्त-व्यस्त हो ही जाता है जो घड़ी देखकर उठते-बैठते, खाते-पीते, काम करते और सोते हैं। वैसे घड़ी भी एक ज़माने तक तो संपन्न लोगों के हाथों में ही देखी जा सकती थी। या यूं कहें कि जिसकी कलाई पर घड़ी बंधी होती, उसका दस लोगों के बीच अपना ही रूतबा होता था। पर अब वह बात नहीं रही। अब तो इलेक्ट्रानिक घड़ियों का युग है। वो भी ऐसी कि फुटपाथ पर बिकती हैं। कोई भी पच्चीस-तीस रुपए खर्च करे और अपनी कलाई पर घड़ी बांध ले।

पर घड़ी आई कहां से? क्या घड़ी हमेशा से मानव के जीवन में थी? जब घड़ी नहीं थी तब भी तो दुनिया चलती थी। तब भी लोग समय का अंदाज़ लगाते थे। तुमने कभी सोचा है दीवाल पर टंगी, टेबिल पर रखी या किसी की कलाई में बंधी टिक-टिक करती घड़ी कैसे बनी? किसने बनाए घंटे, मिनट, सेकेंड? लो हमने कहा और तुम सोचने लगे! कोई बात नहीं, चलो इस बार घड़ी के बहाने समय मापने के इतिहास की खोज पड़ताल करते हैं।

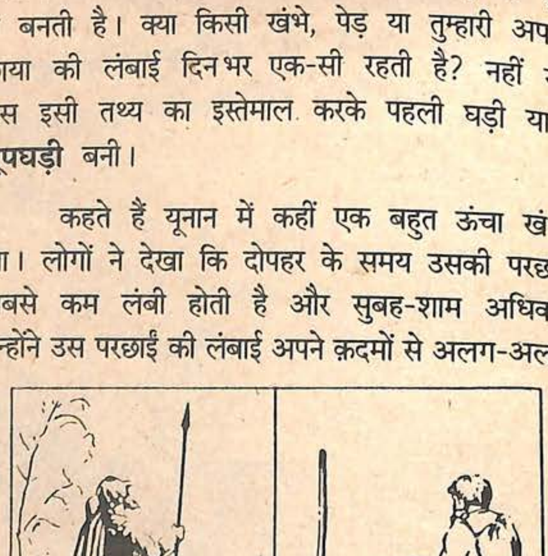
करोड़ों-वर्षों पहले जब न तो धरती पर इंसान था और न उसकी बनाई घड़ी। पर तब भी प्रकृति की बनाई एक घड़ी अपना काम लगातार कर रही थी। वह घड़ी आज भी है। जानते हो कौन है वह घड़ी? वास्तव में हमारी पृथ्वी ही वह घड़ी है। पृथ्वी एक बड़े लट्टू की तरह अपनी धुरी पर एक समान गति से घूमती है और साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा भी करती है।

यदि हम पृथ्वी की गति द्वारा चलने वाली एक बड़ी घड़ी बना सकते, तो इस घड़ी की दो सुईयां होतीं—एक वर्ष वाली और दूसरी रात-दिन वाली। वर्ष वाली सुई डायल पर एक चक्कर तब पूरा करती, जब पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपना एक चक्कर लगा लेती। इसी तरह पृथ्वी जब अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाती, तो रात-दिन वाली सुई का डायल पर एक चक्कर पूरा हो जाता।

वास्तव में रात-दिन और वर्ष समय की मौलिक मापें हैं, जिन्हें प्रकृति ने हमें दिया है। बाकी माप तो हमने स्वयं बनाई हैं। रात और दिन को 24 की बजाए 16 या 40 घंटों में भी विभाजित किया जा सकता है। इसी तरह घंटे को भी 60 के बजाए 100 मिनट का और मिनट को 100 सेकेंड का (या मनचाहे सेकेंडों का) बनाया जा सकता है। पर रात और दिन को लंबा या छोटा करना संभव नहीं है। न ही हम पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा तेज़ या धीमी चाल से करने के लिए मजबूर कर सकते हैं।

हम बात कर रहे थे समय मापने की। पृथ्वी की गति तो हम देख नहीं सकते। पर पृथ्वी की गति के कारण ही सूर्य हमें उगता और डूबता प्रतीत होता है। हज़ारों साल पहले मानव के पास समय मापने का एक मात्र साधन यही सूर्य था। आकाश में सूर्य की स्थिति देखकर ही वह सुबह, दोपहर या शाम का अंदाज़ा लगाता था। आज भी इस तरीके का उपयोग किया जाता है पता नहीं तुमने कभी ध्यान दिया है या नहीं। एक और चीज़ है, जिससे समय का अंदाज़ लगाया जा सकता है वह है चीज़ों की छाया, जो धूप में बनती है। क्या किसी खंभे, पेड़ या तुम्हारी अपनी छाया की लंबाई दिनभर एक-सी रहती है? नहीं न! बस इसी तथ्य का इस्तेमाल करके पहली घड़ी यानी **धूपघड़ी** बनी।

कहते हैं यूनान में कहीं एक बहुत ऊंचा खंभा था। लोगों ने देखा कि दोपहर के समय उसकी परछाईं सबसे कम लंबी होती है और सुबह-शाम अधिक। उन्होंने उस परछाईं की लंबाई अपने क़दमों से अलग-अलग



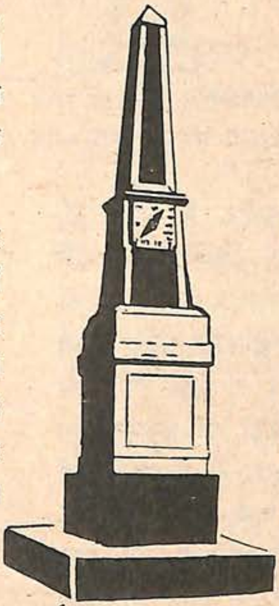
समय पर नाप ली। जब उन्हें समय पता करना होता, आकर झट से खंभे की परछाईं की लंबाई नाप लेते। है न मज़ेदार! पर इस घड़ी को या यूं कहें खंभे को साथ ले जाना मुश्किल था।

साथ ले ज़ाने वाली ऐसी ही एक धूपघड़ी का प्रचलन किसी समय भारत में था। साधु और बाज़ीगर इस घड़ी का उपयोग करते थे। यह घड़ी एक छड़ी पर बनी होती थी। चौकोर छड़ी पर घंटों के निशान लगे थे। छड़ी के एक सिरे पर एक रस्सी बंधी थी और उससे कुछ नीचे एक सुई छड़ी पर आड़ी लगी होती थी। इस सुई की परछाईं छड़ी पर जहां पड़ती, वहां का निशान देखकर समय बताया जा सकता था। इस छड़ी-घड़ी में न केवल सूर्य की गति का ध्यान रखा गया था बल्कि चारों ऋतुओं के लिए छड़ी के अलग-अलग फलक पर निशान लगाए गए थे।

बाद में धूप में बनने वाली छाया के आधार पर ही **सूर्यघड़ी** बनी। एक वृत पर जो बारह हिस्सों में बंटा था, बीचों-बीच लोहे की एक तिकोनी प्लेट सीधी लगाई जाती थी। इस प्लेट की परछाईं घड़ी की सुई की तरह काम करती थी। जब सूरज आकाश में घूमता, तो इस प्लेट की परछाईं भी डायल (वृत) पर घूमती थी, इससे समय का अंदाज़ लगाया जाता था।

ऐसी घड़ियां दो शहरों के बीच पड़ने वाले मील के पत्थर पर लगा दी जातीं थीं, ताकि यात्रा करने वाले समय पता कर सकें।

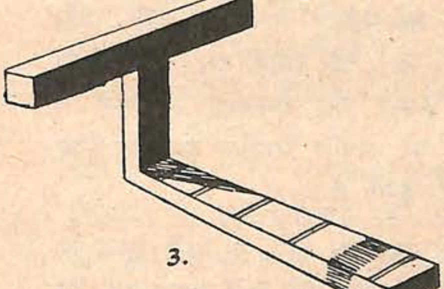
पर धूपघड़ी और सूर्यघड़ी सिर्फ़ दिन में ही काम आती थीं। जब मौसम ख़राब होता या सूरज दिखाई नहीं देता, तब इन घड़ियों का उपयोग नहीं हो सकता था। पर समय मापन के तरीकों की खोज में धूपघड़ी ने एक अध्याय जोड़ा था। कई अलग-अलग तरह की सूर्य घड़ियां बनाई गईं और उनका बहुत समय तक उपयोग होता रहा।



1.



2.

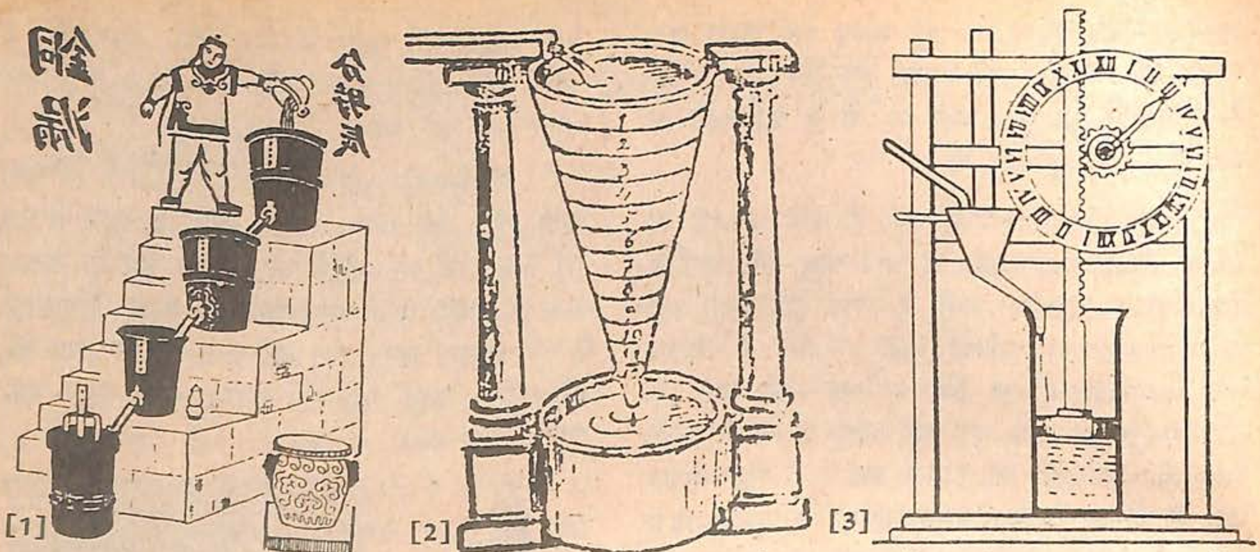


3.



4.

1. *यूनानी सूर्यघड़ी*
2. *दसवीं शताब्दी में इंग्लैंड में इस्तेमाल की जाने वाली एक घड़ी।*
3. *आठवीं शताब्दी के पहले इस्तेमाल की जाने वाली एक मिस्री छाया घड़ी। घड़ी लकड़ी की बनी है।*
4. *अठारहवीं शताब्दी तक इस्तेमाल की जाने वाली एक सुंदर धूपघड़ी। यह लोहे की बनी है और न्यूयार्क शहर के एक बगीचे में लगी है।*



1. चीनी जलघड़ी। 2. एक अधिक विकसित जलघड़ी, सोचो पानी का बर्तन शंखाकार क्यों बनाया गया था? 3. जलघड़ी जिसमें डायल भी था और सुई भी। पानी बूंद-बूंद करके नीचे बरतन में गिरता था और दांतेदार स्केल को ऊपर उठाता था। स्केल सुई के चक्के को घुमाता था।

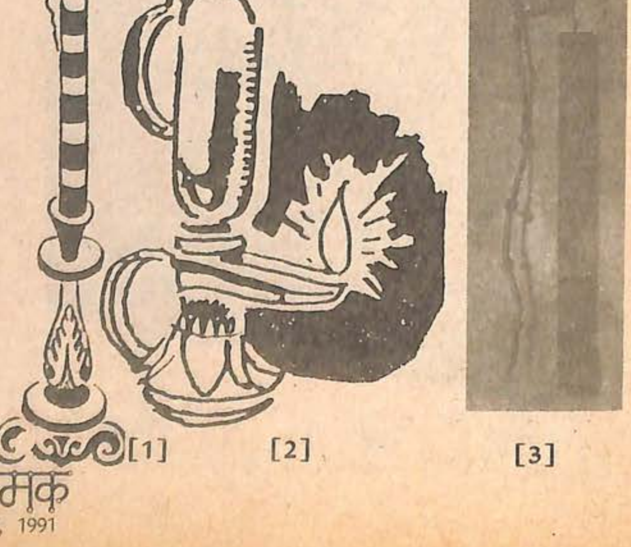
कभी-कभी हम अपनी बातचीत में कहते हैं, "अरे यार उस घटना के बाद तो कितना पानी बह गया नर्मदा में (या अन्य किसी नदी)।" यानी हम समय की एक लंबी अवधि को बताने का प्रयत्न करते हैं। पर एक ज़माने में समय मापने के लिए पानी का ही उपयोग किया जाता था। **जलघड़ी** की कल्पना तुम इस तरह कर सकते हो,—एक मटका है, जिसकी तली में एक इतना बड़ा छेद है कि पानी बूंद-बूंद करके गिरता है। मान लो मटका खाली होने में एक घंटा लगता है। खाली होने पर उसमें दुबारा पानी भर दिया जाए तो वह घंटे भर बाद खाली होगा। इस तरह हम इससे समय माप सकते हैं। इसी आधार पर कई अलग-अलग प्रकार की मज़ेदार जलघड़ियां बनीं। और कुछ घड़ियों में तो जल की जगह दूध का उपयोग किया जाता था। यूनानी और रोमवासी अदालतों में भाषण, बयान आदि की अवधि निर्धारित करने के लिए जलघड़ी का उपयोग करते थे।

जलघड़ियों में रात-दिन होने से यानी सूरज के निकलने न निकलने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता था, पर इनकी भी अन्य समस्याएं थीं। तुम्हीं सोचो क्या दिक्कतें आतीं होंगी जलघड़ियों के साथ?

बहुत समय तक जलघड़ियां फ्रांस तथा अन्य यूरोपीय देशों में प्रचलित नहीं हुई थीं। किसी राजा-महाराजा के यहां एकाध जलघड़ी होती थी, शेष सारी जनता बिना घड़ी के ही काम चलाती थी। लेकिन गिरजाघर के पुजारियों का काम बिना घड़ी के नहीं चल सकता था। उन्हें दिन में आठ बार गिरजे की घंटियां बजानी होती थीं।

पुजारियों की समस्या कुछ हद तक हल की **अग्नि घड़ियों** ने। यह सोचा गया कि यदि किसी दिए में तेल भरकर जलाया जाए तो तेल के जलने के आधार पर समय का अंदाज लगाया जा सकता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मोमबत्तियों का भी उपयोग किया गया। पूरी रात को तीन मोमबत्तियों

***प्राचीन अग्नि घड़ियां**। 1. मोमबत्ती घड़ी। 2. तेलघड़ी, तेल के बर्तन पर लगे पैमाने को देखकर, यह पता किया जाता था कि कितना तेल जल गया है। एक निश्चित समय में तेल की निश्चित मात्रा जलती थी। 3. जलती हुई रस्सी की लंबाई नापकर समय पता किया जाता था। प्राचीन अफ्रीका में इसका उपयोग होता था।*



में विभाजित किया गया। दो मोमबत्तियों के जल जाने का अर्थ था, रात दो तिहाई बीत चुकी है। मोमबत्तियों पर निशान भी लगा दिए जाते थे, जिससे समय के और छोटे हिस्से का हिसाब भी रखा जा सके। ऐसे लैंप भी बने जिनमें एक पैमाना होता था जो उसमें भरे तेल के जलने की मात्रा बताता था। और इस मात्रा का संबंध एक निश्चित अवधि से होता था।

कहते हैं आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जैसे-जैसे दुनिया और उसमें रहने वाले मानव ने प्रगति की, समय मापन की बेहतर प्रणाली की ज़रूरत भी महसूस होती गई। इसी ज़रूरत से निकली एक अधिक विश्वसनीय घड़ी। यह थी **रेतघड़ी**। इसे धूलघड़ी भी कहा जाता है।



रेतघड़ी का प्रचलन भारत में भी था और इसे घंटिका यंत्र के नाम से जाना जाता था। ऐसी ही एक रेतघड़ी सिंधु घाटी में प्राप्त हुई है। इसे शीशे के दो गोलक जोड़कर बनाया जाता था। दोनों गोले एक संकरी नली से आपस में जुड़े होते थे। एक गोले में महीन सूखी रेत भर दी जाती। समय का पता लगाने के लिए रेत से भरा गोला ऊपर की तरफ रखा जाता था। रेत धीरे-धीरे नीचे वाले गोले में गिरने लगती और एक निश्चित समय के बाद ऊपर का गोला पूरा खाली हो जाता। गोले में रेत कम हो या ज़्यादा वह हमेशा एक निश्चित गति से ही नीचे गिरती है। समय मापन का यह तरीका अत्यंत सफल रहा। जल्द ही ऐसी घड़ियां बन गईं, जिनमें चार गोले थे। एक गोला 1/4 घंटे का समय बताता, दूसरा 1/2 घंटे का, तीसरा 3/4 और चौथा पूरा घंटा मापता था।

कैसे गिने जाते हैं घंटे?

आमतौर पर हम एक दिन (रात और दिन) को बारह-बारह घंटों के दो हिस्सों में विभाजित करते हैं। लेकिन घंटे मध्याह्न-सूर्य की स्थिति से ही गिने जाते हैं। मध्यरात्रि से दोपहर तक पहले बारह घंटे पूर्वाह्न (मध्याह्न से पहले) या AM (एंटी मेरिडियन) तथा दोपहर से अर्धरात्रि तक के बारह घंटे पश्चाह्न (मध्याह्न से पश्चात्) या PM (पोस्ट मेरिडियन) कहलाते हैं।

पूर्वाह्न और पश्चाह्न से उत्पन्न होने वाली संभावित गड़बड़ से बचने के लिए रेल, सेना, हवाई-जहाज़, जहाज़, डाकतार आदि जैसे कार्यों में 24 घंटे वाली घड़ी इस्तेमाल की जाती है। इस घड़ी में रात्रि 10-00 बजे को 22-00 से दर्शाया जाता है। इसी तरह दिन के 1-00 बजे को 13-00 से दर्शाया जाता है।

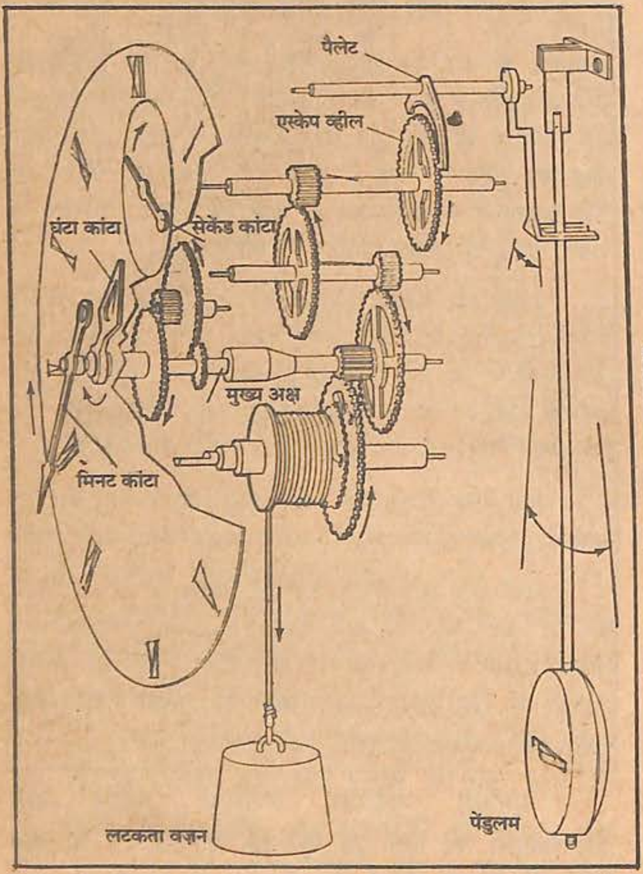
कभी रेल्वे स्टेशन पर लगे टाइम टेबिल को देखो। या कभी लैटर बाक्स पर डाक निकलने का समय बताने वाली पट्टी देखो।

पहले दिन की गिनती भी एक दोपहर से दूसरी दोपहर तक की जाती थी और उसी हिसाब से तारीख़ बदलती थी। लेकिन 1928 में अंतर्राष्ट्रीय खगोलीय संघ ने दिन की गिनती अर्धरात्रि से दूसरी अर्धरात्रि तक करने की शुरुआत की। और तारीख़ भी अर्धरात्रि से बदली जाने लगी।

धूपघड़ी, सूर्यघड़ी, जलघड़ी, रेतघड़ी और अग्निघड़ियों का एक पूरा युग था, लेकिन वह भी बीत गया। पर अपने पीछे प्रयोगों और अनुभवों का ऐसा ख़ज़ाना छोड़ गया जिसकी बुनियाद पर यांत्रिक घड़ियों का युग शुरू हुआ।

ढेर सारे कल-पुर्जों वाली घड़ी का आविष्कार कब हुआ, यह कहना कठिन है। पर इतना तय है कि हम जो छोटी सी डिबिया आज देखते हैं वह शुरू में ऐसी नहीं थी। कल-पुर्जों से लदी-फदी घड़ी के प्राथमिक रूप का विवरण सन् 1250 ईस्वी के आसपास मिलता है।

ये घड़ियां कई टन भारी होती थीं। लोहे की बनी इन घड़ियों को गिरजाघरों तथा ऐसी ही अन्य ऊंची बिल्डिंगों पर लगाया जाता था। इनमें डायल नहीं होते थे। घड़ियों को चलाने के लिए नीचे की ओर सरकते हुए भार का इस्तेमाल किया जाता था। अगर तुमने गांव में किसी कुएं पर लकड़ी से बनी ढोल के आकार की घिर्री और उस पर लिपटी रस्सी देखी हो तो तुम इस घड़ी की कल्पना कर सकते हो। ऐसे ही एक ढोल पर रस्सी लिपटी होती थी। रस्सी के एक सिरे पर भार लटका होता था। ढोल के सिरे पर घंटी लगी सुईयां थीं जो भार के कारण ढोल के घूमने पर, घूमकर या बजकर घंटों का संकेत देती थीं। लेकिन ये घड़ियां



लटकते वज़न से चलने वाली एक घड़ी। वज़न के खिसकने की गति पर नियंत्रण के लिए पेंडुलम का इस्तेमाल किया गया है। पेंडुलम से जुड़ा पैलेट, एस्केप व्हील की गति को नियंत्रित करता है। चित्र में दिखाए तीरों की दिशा से घड़ी की कार्यविधि समझने की कोशिश करो।

भरोसे लायक नहीं थीं, क्योंकि दिन भर में ही वे घंटा-घंटा भर आगे-पीछे हो जाती थीं। हालांकि भार के नीचे सरकने की गति पर नियंत्रण रखने के लिए उनमें एक नियंत्रक की व्यवस्था भी थी।

सन् 1389 तक घड़ियों को बेहतर बनाने की दिशा में बहुत काम हो चुका था। पर ये सारी की सारी घड़ियां ऐसी थीं जिनमें समय को कभी-भी ठीक-ठीक नहीं मापा जा सकता था। सबमें कुछ न कुछ व्यवहारिक खामियां थीं। सबसे बड़ी खामी तो यही थी कि उनमें जो माप इस्तेमाल किया जाता, वह घट या बढ़ जाता था। लोग लगातार इस बात पर विचार कर रहे थे कि ऐसी क्या चीज़ हो सकती है जो घटे या बढ़े नहीं और उसका उपयोग समय मापन में किया जा सके?

गैलीलियो गैलिली के नाम से तो तुम अपरिचित नहीं हो। गैलीलियो ने ही पहली बार यह कहा था कि, **सूर्य नहीं बल्कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है**। और इस बात को कहने के कारण उन्हें बहुत यातनाएं सहनी पड़ी थीं। बहरहाल... गैलीलियो ने 1581 के आसपास एक ऐसा सिद्धांत खोज निकाला, जिसके आधार पर घड़ियों ने एक लंबी छलांग भरी।

गैलीलियो ने गिरजाघर में लटकते लैंप को दाएं से बाएं हिलते देखा। गैलीलियो का ध्यान इस बात पर गया कि लैंप अपने स्थान से दाएं जाने में जितना

मानक समय यानी जी एम टी टाइम

हम यह जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। लेकिन परिक्रमा के दौरान पृथ्वी का वेग पूरे वर्ष घटता-बढ़ता रहता है, इससे सौर दिन बराबर लंबाई के नहीं होते हैं। इस समस्या के हल के लिए साल भर के सौर दिनों की औसत अवधि निकाली गई और उसे **औसत सौर दिन** कहा गया। इस औसत सौर दिन की अवधि को 24 बराबर कालखंडों में बांटा गया।

पृथ्वी के अनियमित वेग के कारण संसार में अलग-अलग स्थानों पर दोपहर के समय में फ़र्क होता है। आज से वर्षों पहले जब विभिन्न नगरों की घड़ियां अलग-अलग समय बताती थीं, इससे थोड़ी-थोड़ी दूर पर भी काम करने के लिए समय निश्चित करने में कठिनाई होती थी। 1883 में संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा ने रेलों के लिए मानक समय की एक प्रणाली स्वीकार की। 1884 में वाशिंगटन में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अन्य देशों में भी ऐसी ही व्यवस्था स्थापित करना स्वीकार किया गया।

ग्रीनविच, इंग्लैंड की रॉयल वेधशाला में 0° से आरंभ करके पृथ्वी की 360° को $15\text{-}15^\circ$ के 24 समय क्षेत्रों में बांटा गया है। इन समय क्षेत्रों को **ध्रुववृत्त** या **मेरिडियन** कहा जाता है। हर दो समय क्षेत्रों के बीच का अंतर एक घंटे को दर्शाता है। ग्रीनविच वेधशाला में, **ग्रीनविच मीन टाइम (जी एम टी)** रिकार्ड किया जाता है। यह समय का एकदम सही मानकीकरण होता है, इसी पर पृथ्वी के अन्य स्थानों का समय निर्धारित है।

ग्रीनविच में सूर्य जब मुख्य मेरीडियन के ऊपर होता है तो दोपहर के बारह बजते हैं। पूर्व की ओर अगले समय क्षेत्र में दोपहर का एक बजता है। पश्चिम

समय लेता है उतना ही समय बाएं जाने में। गैलीलियो ने इस संबंध में और प्रयोग किए। और अपने प्रयोगों के निष्कर्ष पर दोलन से संबंधित सिद्धांत प्रतिपादित किया। उन्होंने पाया कि यदि किसी भार को धागे या रस्सी में बांधकर लटका दिया जाए, तो वह अपने दाएं-बाएं एक निश्चित गति से दोलन करता है। गैलीलियो ने दोलन के उपयोग से घड़ी बनाने का प्रयत्न किया, पर वह अपने जीवनकाल में यह कार्य पूरा नहीं कर सका। 1656 में क्रिस्टियन यूजीन्स नामक डच खगोल शास्त्री ने पहली व्यवहारिक पेंडुलम (दोलक) घड़ी बनाई।

तुम भी ऐसा दोलक बना सकते हो, जिसका बाईं और दाईं ओर का एक दोलन पूरे एक सेकेंड में होता हो। (देखो अपनी प्रयोगशाला)।

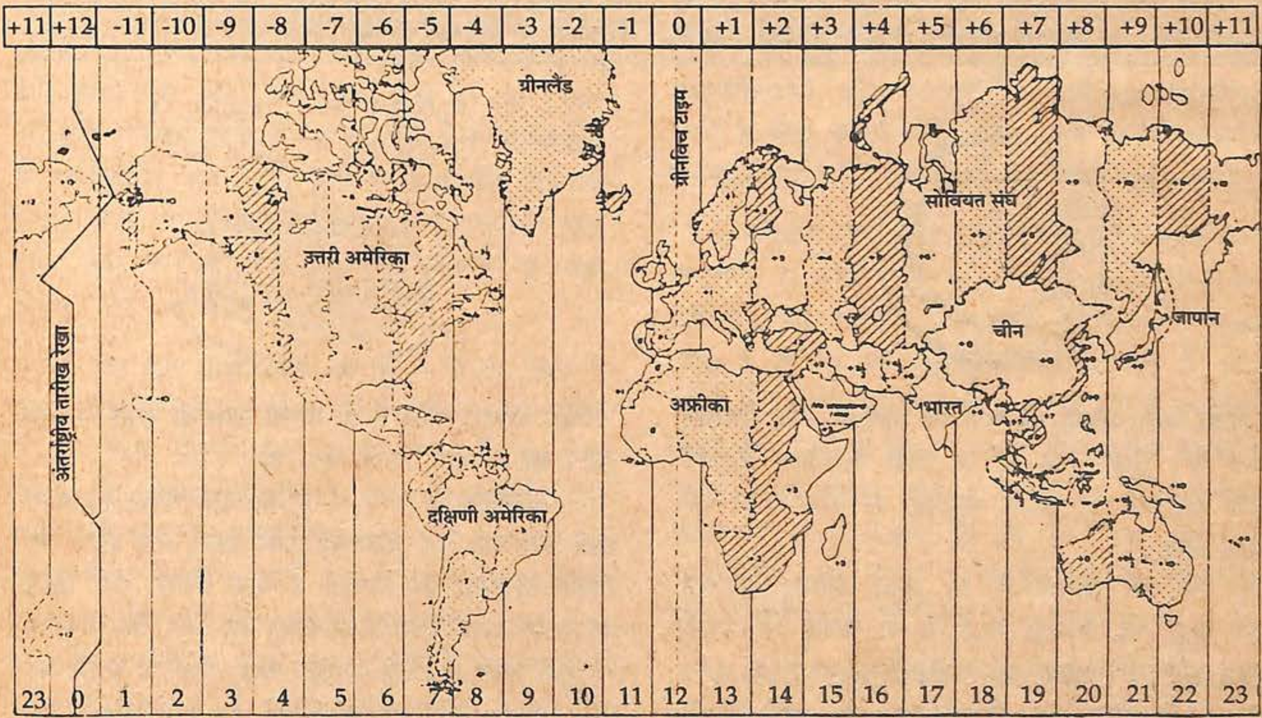
पेंडुलम वास्तव में घड़ी में नियंत्रण का काम करता है। वह भार वाली घड़ियों में लटकते हुए भार

की ओर अगले समय क्षेत्र में ग्यारह बजते हैं।

इंडियन स्टैंडर्ड टाइम (आई एस टी) का आधार वह मेरिडियन है जो मिर्ज़ापुर, उत्तरप्रदेश से गुजरता है। यह मेरिडियन ग्रीनविच के 82.5° पूर्व में है।

जब ग्रीनविच में दोपहर के 12 बजते हैं तो भारत में शाम के 5.30 बजते हैं। आई एस टी नेशनल फिजीकल लेबोरेटरी, दिल्ली द्वारा निर्धारित किया जाता है और इसी आधार पर बाकी सब स्थान अपना समय सही करते हैं!

वैज्ञानिक कार्यों के लिए अब जी एम टी के स्थान पर कोआर्डिनेट यूनिवर्सल टाइम (यू टी सी) इस्तेमाल किया जाता है। इसके लिए आंकड़े संसार की परमाणु घड़ियों से पेरिस में एकत्रित किए जाते हैं। तुमने अख़बारों में पढ़ा होगा कि 1991 का साल एक सेकेंड की देरी से आया है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह देरी पृथ्वी की परिक्रमा की रफ़्तार धीमी होने के कारण हुई है। यह जानकारी भी पेरिस स्थित अंतर्राष्ट्रीय पृथ्वी परिक्रमा सेवा ने दी थी।



चित्र में देखो कि विश्व को किस प्रकार 24 समय क्षेत्रों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग 15° का है और एक डिग्री चार मिनट के बराबर है। 180° देशांतर रेखा के पास से **अंतर्राष्ट्रीय तारीख** रेखा गुजरती है। यहां से दिन आरंभ होता है। इस रेखा के दोनों ओर दो अलग-अलग दिन होते हैं। यदि हम रविवार को पश्चिम से चलकर तारीख रेखा को पार करते हैं तो दिन (रविवार) बीता हुआ कल यानी शनिवार हो जाता है। यदि पश्चिम की ओर ही चलते हैं आने वाला कल रविवार हो जाता है। पूरी पृथ्वी पर एक ही दिन केवल उस क्षण होता है जब तारीख रेखा पर अर्धरात्रि होती है। चित्र में ऊपर की तरफ़ बनी तालिका में समय क्षेत्रों के साथ लिखी संख्या, ग्रीनविच में बारह बजने पर वहां का समय बताती है। (-) चिन्ह ग्रीनविच समय से पीछे, और (+) चिन्ह ग्रीनविच समय से आगे चलना बताता है।

घंटे, मिनट और सेकेंड

वर्ष, माह, रात और दिन किस आधार पर बने यह तुमने 'कथा कैलेंडर की' लेख में देखा था (चकमक जनवरी, 91)।

मिस्र, यूनान और रोम के लोगों ने दिन और रात को बारह-बारह घंटों में बांट रखा था। दिन के बारह घंटे अलग होते थे और रात के बारह घंटे अलग। लेकिन दिन और रात तो बराबर नहीं होते। गर्मियों में दिन बड़ा और रात छोटी होती है, तो जाड़ों में दिन छोटा और रात बड़ी। इस कारण से मिस्र में गर्मियों में दिन का एक घंटा आज के सत्तर मिनट के बराबर होता था, जबकि जाड़ों में दिन का एक घंटा आज के पचास मिनट के बराबर होता।

इस तरह के विभाजन से उस समय चलने वाली जल घड़ियां भी हर मौसम के लिए बनानी होती थीं। हालांकि बाद में जलघड़ियों में ऐसे सुधार किए गए, जिससे उनका उपयोग हर मौसम में हो सके।

बाद में रात और दिन के कुल समय को चौबीस घंटों में और चौबीस घंटों को बारह-बारह घंटे के दो हिस्सों में बांटा गया।

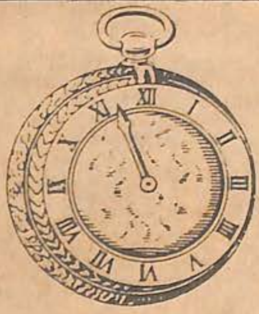
फिर एक घंटे को 60 मिनट और मिनट को 60 सेकेंड में बांटा गया। यह विभाजन बेबिलोन के खगोलविज्ञानी पुजारियों ने किया था। बेबिलोन की अंक पद्धति 60 पर आधारित थी। उन्होंने वृत की परिधि को 360 हिस्सों यानी डिग्रियों में बांटा था। प्रत्येक डिग्री को 60 मिनट और प्रत्येक मिनट को 60 सेकेंड में बांटा था। हम आज भी वृत की परिधि को इसी आधार पर बांटते हैं।

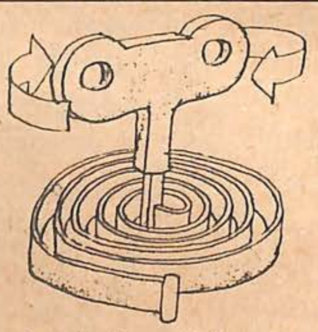
पर व्यवहारिक रूप में सिर्फ घंटे का उपयोग ही होता था। मिनट की सुई घड़ियों के डायल पर अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में और सेकेंड की सुई उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में दिखाई दी।

समय का यह विभाजन तब से ऐसा ही चला आ रहा है। हां, आधुनिक विज्ञान ने सेकेंड को नॉनो सेकेंड और पाइको सेकेंड में भी विभाजित कर लिया है।

प्राचीन भारत में एक दिन का विभाजन तीस मुहूर्तों में किया गया था (तब दिन रात एक साथ गिने जाते थे)। प्रत्येक मुहूर्त का एक विशेष नाम था। इसका उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में मिलता है। मुहूर्तों को भी प्रति मुहूर्त में बांटा गया था।

प्राचीन भारत के महान गणितज्ञ तथा खगोलशास्त्री आर्यभट्ट ने अपने ग्रंथ आर्यभट्टीय में समय की इकाईयों पर विचार किया है। उन्होंने एक दिन को 60 नैड़ी और एक नैड़ी को 60 विनाड़ियों में बंटे होने की बात लिखी है।

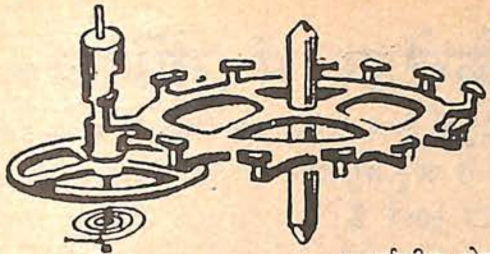




से घूमने वाले पहियों की गति को नियंत्रित और नियमित करता है। तुम्हारे घर में या कहीं आसपास पेंडुलम वाली घड़ी हो तो उसमें पेंडुलम के काम करने का तरीका देखो।

पर इन घड़ियों में भी मुख्य आधार लटकता हुआ वज़न था, जिनकी मदद से वे चलती थीं। कहीं अपनी दुनिया में खोया एक घड़ीसाज़ लगातार यह सोच रहा था कि ऐसा कुछ किया जाए ताकि घड़ी चलाने के लिए बड़े भार की ज़रूरत ही न पड़े। पीटर हैनलीन नामक इस घड़ीसाज़ के दिमाग़ में आया कि क्यों न घड़ी में स्प्रिंग का उपयोग किया जाए। अब यह तो तुम जानते ही हो कि स्प्रिंग की खासियत है कि उसे कितना भी ऐंठ दो, वह हमेशा अपनी पुरानी स्थिति में वापस आना चाहता है। बस पीटर ने इसी गुण का उपयोग किया। पीटर ने ही पहली जेबघड़ी बनाई, जिसमें स्प्रिंग का उपयोग किया गया था।

जेबघड़ी के भीतर पीतल का एक चपटा-सा बक्स होता था, यह ड्रम कहलाता और इसमें वह इंजन बंद रहता, जो घड़ी को चलाता है यानी स्प्रिंग। इस स्प्रिंग का अंदर वाला सिरा स्थिर होता था और उस एक्सल से जुड़ा होता है जिस पर ड्रम रखा रहता है स्प्रिंग का बाहर वाला सिरा ड्रम की दीवार से जुड़ा होता। जब घड़ी में चाबी भरते, तो ड्रम को घुमाया जाता और ड्रम के साथ-साथ स्प्रिंग भी घूमता। स्प्रिंग में ऐंठन भर जाती। जैसे ही चाबी छोड़ी जाती ऐंठन खुलने लगती और स्प्रिंग अपनी पहली स्थिति में वापस आने की चेष्टा करता। ड्रम वापसी में उतने ही चक्कर लगाता, जितने उसे घड़ी में चाबी भरते समय लगाए थे।



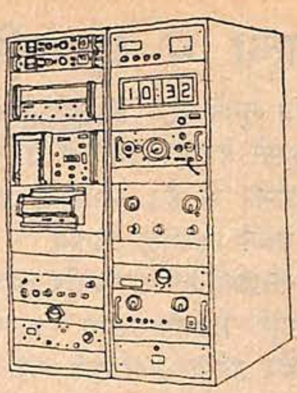
फ्लाईव्हील दोलक

इसे और अच्छी तरह समझने के लिए तुम किसी चाबी वाले खिलौने को देखो। उसमें यही क्रिया होती है।

पर इस घड़ी में भी स्प्रिंग की ऐंठन के खुलने को नियंत्रित करना ज़रूरी था, तभी वह घड़ी की तरह काम कर पाती। पीटर ने इस काम के लिए छोटे-छोटे भारों का उपयोग किया था। यानी अभी भारों से पूरी तरह छुटकारा नहीं मिला था।

पीटर हैनलीन से आज तक घड़ी के भीतरी और बाहरी रूपों में बहुत परिवर्तन हुआ है। बड़ी घड़ियों में तो दोलक लगाकर भार से चलने वाले पहियों की गति को नियंत्रित किया जा सकता था। लेकिन छोटी घड़ियों में दोलक लगाना संभव नहीं था। हाइंजिस नामक एक घड़ीसाज़ ने छोटी घड़ियों के लिए भी एक दोलक ढूंढ निकाला। यह दोलक एक फ्लाईव्हील है और इसमें एक बाल जैसा स्प्रिंग होता है। यह इस्पात का बना सर्पाकार होता है। इसका एक सिरा फ्लाईव्हील के एक्सल से और दूसरा घड़ी से जुड़ा होता है यानी स्थिर। अगर फ्लाईव्हील को दाएं या बाएं घुमाकर छोड़ दिया जाए तो वह बहुत कुछ एक दोलक की तरह दोलन करने लगता है।

जब हम फ्लाईव्हील को घुमाते हैं तो स्प्रिंग में ऐंठन भरने लगती है, जैसे ही फ्लाईव्हील को छोड़ते हैं तो स्प्रिंग अपनी पुरानी स्थिति में आने की चेष्टा करती है। लेकिन फ्लाईव्हील के कारण वह एकदम खुल नहीं पाती है। जब स्प्रिंग खुल नहीं पाती तो वह दूसरी दिशा में ऐंठने लगती है। बस यही क्रिया चलती रहती है। स्प्रिंग की ऐंठन खुलते समय शक्ति फ्लाईव्हील में और फ्लाईव्हील घूमते समय स्प्रिंग में एकत्रित होती रहती है। वास्तव में तो एक बार चाबी भर देने के बाद घड़ी चलती रहनी चाहिए, लेकिन घर्षण और हवा से होने वाली रुकावट के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाता। इसीलिए इन घड़ियों में प्रतिदिन चाबी भरनी होती है। फ्लाईव्हील दोलक की ही भांति घिर्रियों को धीरे-धीरे और समान रूप से चलाता है। हमारी चाबी से चलने वाली कलाई घड़ियां इसी तरह काम करती हैं।



केसियम परमाणु घड़ी

बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक जेबघड़ियों का प्रचलन था, लेकिन फिर धीरे-धीरे हाथघड़ियों की मांग बढ़ने लगी। और अब तो तरह-तरह की हाथघड़ियां बाज़ार में उपलब्ध हैं। ऐसी घड़ियां भी हैं जिनमें केवल समय ही नहीं, तारीख़, दिन, महीने का नाम तथा चंद्रमा की कलाएं भी देखी जा सकती हैं।

और अब तो **इलेक्ट्रॉनिक घड़ियों** का जमाना है। इलेक्ट्रॉनिक घड़ियां भी तरह-तरह की हैं। सबकी कार्यप्रणाली तो एक ही है, लेकिन उनमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री अलग-अलग है। जैसे आजकल प्रयोगशालाओं और आकाश के तारों का अवलोकन करने के लिए अत्यंत सही समय बताने के लिए **क्वार्ट्ज़ क्रिस्टल घड़ी** और **परमाणु घड़ी** उपयोग में लाई जाती है।

क्वार्ट्ज़ एक सामान्य खनिज है। रेत क्वार्ट्ज़ के लघुकणों से बनती है। शुद्ध क्वार्ट्ज़ में वैद्युतिक गुण होते हैं। जब क्वार्ट्ज़ क्रिस्टल में से विद्युतधारा गुजारी जाती है तो क्रिस्टल बिलकुल नियमित रूप से कंपन करता है। कंपन की गति क्रिस्टल की मोटाई पर निर्भर करती है। क्रिस्टल जितना पतला होगा उसमें उतना ही ज़्यादा कंपन होगा। क्वार्ट्ज़ घड़ियों में क्रिस्ट्रल इतना पतला कर दिया जाता है कि वह एक सेकेंड में 10,00,000 बार कंपन करता है। इसलिए सेकेंड का कई हजारवां भाग भी मापा जा सकता है।

सबसे आधुनिकतम घड़ी परमाणु घड़ी है। यह घड़ी सेकेंड के दस लाखवें हिस्से को भी माप सकती है।

परमाणु घड़ी और गैलीलियो के दोलक वाली घड़ियों के बीच चार शताब्दियां बीत चुकी हैं। और शायद आने वाला समय परमाणु घड़ी को भी कहीं पीछे छोड़ दे।

□ राजेश उत्साही

वेधशाला में धूपघड़ी

जंतर-मंतर का नाम तुमने सुना होगा। जंतर-मंतर का संबंध वास्तव में हमारे देश में प्रचलित खगोल विज्ञान के अध्ययन के तरीकों से हैं। अठारहवीं शताब्दी में जयपुर के राजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने खगोलीय अध्ययन के लिए वेधशालाओं का निर्माण करवाया था। ये वेधशालाएं जयपुर, दिल्ली, मथुरा, वाराणसी और उज्जैन में स्थित हैं। इनमें से दिल्ली की वेधशाला जंतर-मंतर के नाम से जानी जाती है। जयपुर की वेधशाला सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

पिछले आवरण पर दिया चित्र देखो। यह उज्जैन की वेधशाला का है। इसमें तुम्हें एक सीढ़ीनुमा दीवार दिखाई पड़ रही होगी। यह **सम्राट यंत्र** है। इसके दो हिस्से हैं—एक तो सीढ़ियां, दूसरा इसके दोनों बाजू में बनी दीवारें। प्रत्येक दीवार एक चौथाई गोले के बराबर है। इन गोल दीवारों पर घंटे, मिनट तथा सेकेंड के निशान खुदे हुए हैं। वास्तव में सम्राट यंत्र एक घड़ी है। चौथाई गोले उसके डायल हैं। प्रत्येक चौथाई गोला आधे दिन का समय बताता है। जब आकाश में सूर्य चमकता है तो सीढ़ीनुमा दीवार की छाया किसी एक गोले पर पड़ती है। छाया गोले के जिस निशान पर पड़ती है उसे देखकर समय पता किया जाता है।

सम्राट यंत्र की सीढ़ीनुमा दीवार पृथ्वी की धुरी के समानांतर है। इसका उत्तरी भाग उत्तरी ध्रुव के सामने है।

चित्र में सामने की ओर तुम्हें घड़ी के डायल की भांति एक गोला दिखाई दे रहा होगा। यह **नाड़ी वलय यंत्र** है। ऐसा ही एक गोला पीछे की तरफ यानी सम्राट यंत्र के सामने बना है। दोनों गोलों पर आधे-आधे हिस्सों में घंटे व मिनट के निशान खुदे हैं। बीच में एक कील भी लगी है। सूर्य जब चमक रहा होता है तो कील की छाया गोले पर बने निशानों पर पड़ती है। दो गोले यूं ही नहीं बनाए गए हैं। वास्तव में जब सूर्य उत्तरायण होता है तो यंत्र की उत्तरी दिशा में बने गोले पर छाया पड़ती है। जब दक्षिणायन होता है तो दक्षिण दिशा में बने गोले पर पड़ती है।

इनके अलावा वेधशाला में और भी यंत्र हैं। अगर तुम कभी उज्जैन जाओ तो स्वयं वहां जाकर उनके बारे में पता करना।

□ कालूराम शर्मा

कैलेंडर में गणित

पिछली बार हमने कैलेंडर की संख्याओं में बनने वाले आयतों में जादू की खोज की थी। इस बार ज़रा वर्गों में दिमाग लगाते हैं।

1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

सबसे पहले 2 × 2 यानी 2 संख्याओं वाला वर्ग लें :

1	2	3	4
8	9	10	11

इसमें मज़ेदार बात क्या है? ज़रा देखें :

1 + 9 = 10   3 + 11 = 14

2 + 8 = 10   4 + 10 = 14

यानी यदि हम वर्ग के कर्ण पर पड़ने वाली संख्याओं को जोड़ें तो योग एक ही आता है।

क्या यह मज़ेदार बात तीन संख्याओं वाले वर्ग में भी है? दो उदाहरण लेकर जांच करते हैं :

1	2	3	12	13	14
8	9	10	19	20	21
15	16	17	26	27	28

1 + 9 + 17 = 27   12 + 20 + 28 = 60

3 + 9 + 15 = 27   14 + 20 + 26 = 60

यह तो बहुत मज़ेदार है। है ना? तुम और ऐसे वर्ग चुनकर देख सकते हो कि क्या नियम सही है।

अब ज़रा इन्हीं वर्गों की बीच वाली (आड़ी व खड़ी) पंक्ति की संख्याओं का भी जोड़ देखें :

2 + 9 + 16 = 27   13 + 20 + 27 = 60

8 + 9 + 10 = 27   19 + 20 + 21 = 60

पर क्या ऊपरी तथा निचली, पहली और तीसरी पंक्तियों का योग भी वही आता है? करके देखो!

इन वर्गों में एक और मज़ेदार बात छुपी हुई है। वर्ग के बीचोंबीच की संख्या में 3 का गुणा करने पर हमें योग के बराबर ही संख्या मिलती है :

9 × 3 = 27   20 × 3 = 60

अब तुम क्या 4 संख्या वाले वर्ग में छुपा जादू पहचान सकते हो? ज़रा करके देखो।

□ पी.के. श्रीनिवासन

समापन किस्त

भूगर्भ की यात्रा

अब तक तुमने पढ़ा

प्रोफ़ेसर अपने एक सहायक और पथ प्रदर्शक के साथ भूगर्भ की यात्रा पर हैं। वे यात्रा करते हुए एक समुद्र के किनारे लग गए। वहां उन्हें एक सुरंग मिली, जिसमें अंदर जाने पर उन्हें आगे का रास्ता बंद मिला। उन्होंने उसे बारूद लगाकर तोड़ डाला। सुरंग का रास्ता खुलते ही पानी का एक बड़ा रेला आया और सबको बहाकर ले गया। वे लोग एक बेड़े पर सवार थे। अब आगे पढ़ो...

मुझे होश आया तो मैंने आंखें खोलीं। मैंने देखा कि हैंस अपने मज़बूत हाथों से मुझे और चाचा जी को थामे हुए था। मुझे कोई ख़ास चोट तो नहीं आई थी। हां, थकावट से चूर अवश्य हो गया था। मैं एक ऐसी चोटी पर लेटा था जिससे सिर्फ़ दो क़दम हटकर ही हज़ारों फुट गहरी खाई थी। हम ज़रा से हिलने-डुलने से ही उसमें गिर सकते थे। हैंस ने हमें एक बार फिर बचाया और हमें एक सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। यहां हमें वास्तविक आकाश के दर्शन हुए। 62 दिनों में पहली बार हम आकाश देख रहे थे।

"हम कहां हैं?" चाचा जी ने पूछा। हैंस ने सिर हिलाकर बताया कि वह नहीं जानता।

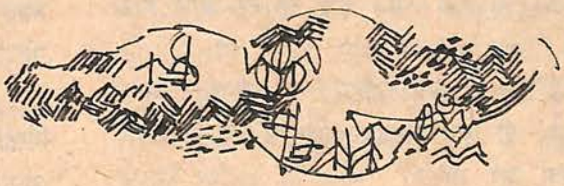
"क्या आइसलैंड द्वीप में," मैंने पूछा।

"नहीं।"

"क्या कहा? नहीं?" प्रोफ़ेसर चीखे।

"हैंस ग़लती कर रहा है।" मैंने कहा, "हमें यात्रा के बीच बड़े-बड़े आश्चर्यों का सामना करना पड़ा था और यह उनमें किसी से कम न था। हमें बर्फ़ से ढके ज्वालामुखी देखने की आशा थी। लेकिन यहां तो सूर्य की गरमी से झुलसी हुई सूखी पहाड़ियों के अतिरिक्त कुछ भी न था।







अंत में प्रोफ़ेसर ही ने शांति भंग करते हुए कहा "जो भी हो, यह आइसलैंड द्वीप की तरह तो है नहीं।"

हमसे कुछ ही दूरी पर हरियाली थी और हमसे क़रीब 500 फुट की दूरी पर वह मुहाना था जिससे हम बाहर फेंक दिए गए थे। लेकिन इतना तो निश्चित ही था कि आइसलैंड द्वीप की तरह वहां कुछ भी न था। हमारे सामने थे हरे-हरे वृक्ष और उनके पीछे लहरा रहा था नीला सागर। यह स्थान एक छोटे से द्वीप की तरह मालूम दिया। पूरब की ओर थोड़े से मकान भी थे।

"हम कहां पर हैं? हम कहां पर हैं?" मैं बराबर सोचे जा रहा था। हैंस ने अपनी आंखें बंद कर लीं। लगता था उसे इस विषय में कोई दिलचस्पी न थी।

चाचा जी बोले, "ये चाहे जो भी पर्वत हो, लेकिन हम हैं किसी गरम स्थान पर ही—सिर्फ़ गरम ही नहीं बल्कि ख़तरनाक स्थान पर हैं हम सब। हम एक सक्रिय ज्वालामुखी के बीच से तो सुरक्षित निकल आए हैं लेकिन अगर कहीं चट्टान ही लुढ़क गई तो हमारी हड्डियों-पसलियों का पता न चलेगा। हमें तुरंत नीचे उतर चलना चाहिए। साथ ही मैं तो भूख और प्यास से मरा जा रहा हूं।"

रास्ता अच्छा नहीं था इसलिए इस उस पर चलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। हम बराबर बातें किए जा रहे थे।

"हमें एशिया में होना चाहिए," मैं चीखा, "भारत के तट पर और या फिर मलाया द्वीप में। हमने आधी दुनिया की यात्रा कर डाली।"

"लेकिन कंपास क्या बतला रहा है।"

"कंपास के अनुसार हम बराबर उत्तर की तरफ़ बढ़ते आए हैं।

"तब फिर कंपास हमें सच्ची बात नहीं बता रहा।"

"चाचा जी! यह कैसे हो सकता है?" इस प्रश्न का मुझे कोई भी उत्तर न मिला।

और अब हम किसी सुंदर देश के निकट थे। मुझे ज़ोर से भूख भी लग रही थी और प्यास भी। कुछ दूर चलने के बाद एक पेड़ से तोड़ हमने फल खाए और हमें पीने के लिए पानी भी मिला। तभी पेड़ पर चढ़ा हुआ एक बच्चा दिखाई दिया। बेचारा फटे-पुराने कपड़े पहने बड़े ही दीन भाव से हमें देख रहा था। हमसे कुछ डर-सा रहा था बेचारा। जैसे ही वह भागने लगा, हैंस ने उसे पकड़ लिया। बच्चा लगातार चीखे जा रहा था। चाचा जी ने उसे पुचकारा और प्यार करते हुए जर्मन भाषा में पूछा, "क्यों मेरे नन्हें दोस्त, इस देश का क्या नाम है?"

बच्चा चुप रहा।

"बहुत अच्छा," चाचा जी बोले, "हम जर्मनी में नहीं हैं," और फिर उससे अंग्रेज़ी में पूछा। बच्चा अब भी चुप रहा।

"हम इंग्लैंड में भी नहीं हैं। अच्छा, अब इटैलियन भाषा में पूछूं।" चाचा जी बोले और अबकी बार इटैलियन में पूछने पर भी कोई उत्तर न पाकर वे झुंझला पड़े और बच्चे के कान उमेटते हुए इटेलियन भाषा में ही गरजे, "नहीं बोलोगे तुम। क्यों बे! इस द्वीप को किस नाम से पुकारता है? तू बोलता है कि नहीं।"

"स्ट्रॉम्बोली" कहकर वह बच्चा पेड़ों के झुरमुट में भागकर कहीं गायब हो गया। अब हमें उसकी ज़रूरत भी नहीं थी। स्ट्रॉम्बोली! इस नाम को सुनने की तो ज़रा सी भी आशा न थी। यानी हम भूमध्य रेखा के बीचों-बीच में थे और वे पहाड़ थे कैलेब्रिया के। हमारी यात्रा भी कम आश्चर्यजनक नहीं रही। हम एक ज्वालामुखी के अंदर गए और दूसरे से बाहर आए। एक उजाड़ भाग को पीछे छोड़ हम इस सुंदर प्रदेश में आ पहुंचे। फलों का नाश्ता करने के बाद हम पानी पीकर घूमने के लिए निकले। हमने वहां के निवासियों से अपनी यात्रा के विषय में कुछ भी न बताना ही उचित समझा, क्योंकि इसका सिर-पैर भी उनमें से किसी की समझ में न आता। उन लोगों से बताया कि हम लोग नाविक हैं और दुर्घटनावश यहां आ पहुंचे हैं। घूमते-घूमते हम सैनविकेंजो के बंदरगाह तक चले गये। यहां आकर हैंस ने अपनी सेवा के 13वें सप्ताह का पारिश्रमिक मांगा। चाचा जी ने बड़ी प्रसन्नता से चुका दिया। उस समय हमारा पथ-प्रदर्शक मुस्कुराया—इससे पहले हमने उसे कभी भी ऐसा करते नहीं देखा था। यहां लोग बड़े दयालु और भले थे। उन्होंने हमें खाना खिलाया और कपड़े भी पहनने को दिए। लगभग 48 घंटे रुक कर हम मेसिना के लिए चल पड़े। उस दिन तारीख थी 31 अगस्त।

शुक्रवार 4 सितम्बर को हम मेसिना से भी चल पड़े। तीन दिन बाद हम मारसेलीस पहुंचे।

9 सितम्बर की शाम को हम हैम्बरी पहुंचे। मैं



यहां मार्था के आश्चर्य या ग्राॅबेन की खुशी का वर्णन करने नहीं जा रहा हूं।

"अब तुम एक प्रसिद्ध मनुष्य हो," ग्राॅबेन बोली "तुम्हें अब हमसे कोई अलग नहीं कर सकता।"

चाचा जी की यात्रा पर पहले तो लोग विश्वास ही नहीं कर रहे थे। लेकिन क्योंकि हैंस हमारे साथ ही था और कुछ मित्रों को भी मेरी यात्रा का हाल मालूम हो चुका था इसीलिए कुछ लोगों को हमारी यात्रा की कहानी पर विश्वास होने लगा। इस यात्रा के कारण चाचा जी अब महान् व्यक्तियों में से गिने जाने लगे। और उनके साथ मैं भी। फिर तो हमारा बड़ा सम्मान हुआ—खूब दावतें खाने को मिलीं। चाचा जी के शत्रुओं ने उनकी आलोचना भी खूब की। उनका काफ़ी विरोध भी हुआ।

(समाप्त)

जूलेवर्न के उपन्यास *'ए जर्नी इन टू दी सेंटर ऑफ अर्थ'* का अनुवाद। अनुवादक : प्रभात किशोर मिश्र। सौजन्य : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद। सभी चित्र : शोभा घारे।

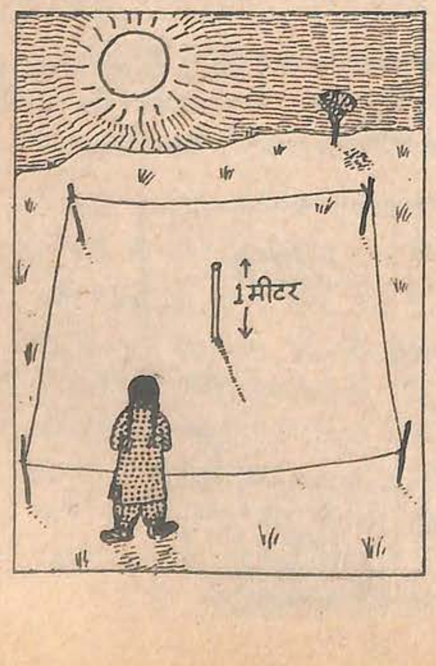


तुमने देखा कि एक ज़माने में समय मापने के लिए कैसी-कैसी जुगत भिड़ानी पड़ती थी। अब तो हमारे पास घड़ी होती है, झट से देखकर समय पता कर लेते हैं। आओ, इस बार अपनी प्रयोगशाला में समय मापने के विभिन्न तरीक़ों पर आधारित कुछ प्रयोग करते हैं।

ज़मीन में गड़ी, छड़ी की घड़ी

यह प्रयोग करने के लिए ऐसा दिन चुनना होगा, जब **आसमान** साफ़ हो और धूप खिली हो। प्रयोग सुबह नौ बजे से शाम चार बजे तक चलेगा। ऐसा इसलिए कि आमतौर पर नौ से पहले और चार के बाद पड़ने वाली परछाई इतनी लंबी और धुंधली होती है कि उसे नापना कठिन होता है। अगर तुम नाप सकते हो तो अच्छी बात है।

एक मीटर से कुछ अधिक लंबी छड़ी लो। छड़ी पर एक मीटर की लंबाई पर निशान लगा लो। अब छड़ी को किसी ऐसे स्थान पर लंबवत गाड़ो, जहां अधिक से अधिक समय तक धूप रहती हो। छड़ी इस तरह गाड़ो कि छड़ी का ठीक एक मीटर हिस्सा ज़मीन से बाहर रहे। गाड़ने के लिए ऐसी जगह चुनो जहां कोई उसे हिलाए-डुलाए नहीं। जगह ऐसी भी होनी चाहिए जो समतल हो तथा उस पर दिन भर प्रयोग के दौरान किसी पेड़ या मकान आदि की छाया न पड़े। तुम चाहो तो सुरक्षा के लिए छड़ी के चारों ओर ज़मीन पर एक चौकोर खींचकर उसके चारों कोनों पर एक-एक छड़ी या खूंटी गाड़ लो और उन पर एक रस्सी बांधकर घेरा बना लो।



अब छड़ी के ऊपरी सिरे की परछाईं ज़मीन पर जहां पड़े वहां परछाईं के सिरे पर निशान लगाकर उस पर पतली खूंटी या लंबी कील गाड़ दो, साथ ही परछाईं की लंबाई भी नाप लो। यह अवलोकन घड़ी की मदद से हर आधे घंटे बाद लो और निशान लगाकर खूंटी या कील गाड़ते जाओ। साथ ही परछाईं की लंबाई भी नोट करते रहो।

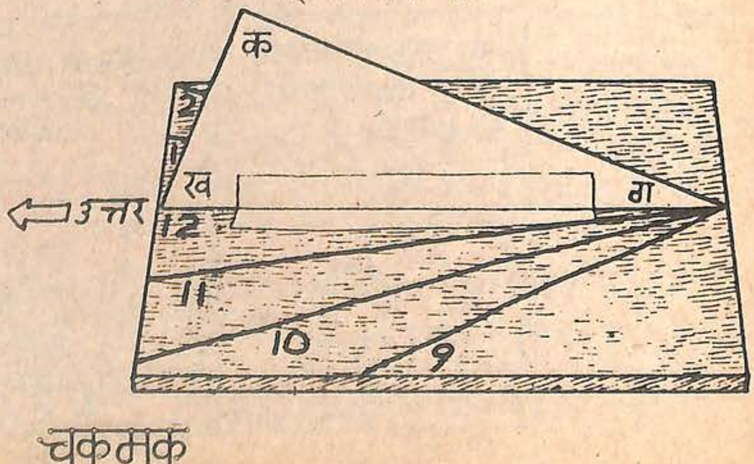
परछाईं की लंबाई और समय की एक तालिका बनाओ। क्या तुम अगले दिन ज़मीन में गड़ी इस छड़ी की परछाईं से समय बता सकते हो?

एक मज़ेदार बात, ज़मीन पर लंबवत् खड़ी हुई किसी भी चीज़ की **सबसे कम लंबाई वाली परछाईं हमेशा उत्तर-दक्षिण दिशा** में पड़ती है। तुमने जो प्रयोग किया उसमें सबसे कम लंबाई वाली परछाईं पर एक सीधी रेखा जो उत्तर-दक्षिण दिशा बताएगी, बना लो। इसका उपयोग तुम सूर्यघड़ी में करोगे।

सूर्यघड़ी

सूर्यघड़ी बनाने के लिए पुट्ठे पर एक समकोण त्रिभुज **क ख ग बनाकर** काट लो। जिसमें कोण **ग** तुम्हारे शहर के **अक्षांश** के बराबर हो और कोण **क** 90° का हो (चित्र देखो)। तुम्हारा शहर किस अक्षांश पर है, यह भारत के किसी नक्शे पर देख सकते हो।

इस त्रिभुज को लकड़ी के चौकोर तख़्ते के बीचोंबीच लंबवत् खड़ा कर लो। त्रिभुज को खड़ा रखने के लिए भुजा **ख ग** के साथ त्रिभुज के दोनों ओर काग़ज़ की पट्टियां चिपका दो।



अब तख़्ते को समतल ज़मीन पर जहां दिन भर धूप आती हो, इस प्रकार रखो कि त्रिभुज का आधार **ख ग** उत्तर-दक्षिण दिशा में हो और बिंदु **ख** ठीक उत्तर दिशा बताए। उत्तर-दक्षिण दिशा वाली रेखा जो तुमने पहले प्रयोग में बनाई थी, यहां इस्तेमाल कर सकते हो। या उत्तर-दक्षिण दिशा मालूम करने का और कोई तरीका तुम जानते हो तो इस्तेमाल करो। अब प्रातः नौ बजे से शुरू करके प्रत्येक घंटे पर त्रिभुज की भुजा **क ग** की तख़्ते पर पड़ रही परछाईं पर रेखा खींचते जाओ। परछाईं की रेखा पर समय भी लिखते जाओ।

इस सूर्यघड़ी से तख़्ते पर परछाईं की स्थिति देखकर तुम समय का पता लगा सकते हो। पर ध्यान रहे कि इस सूर्यघड़ी का उपयोग करते समय त्रिभुज का आधार **ख ग** ठीक उत्तर-दक्षिण दिशा में हो।

जलघड़ी

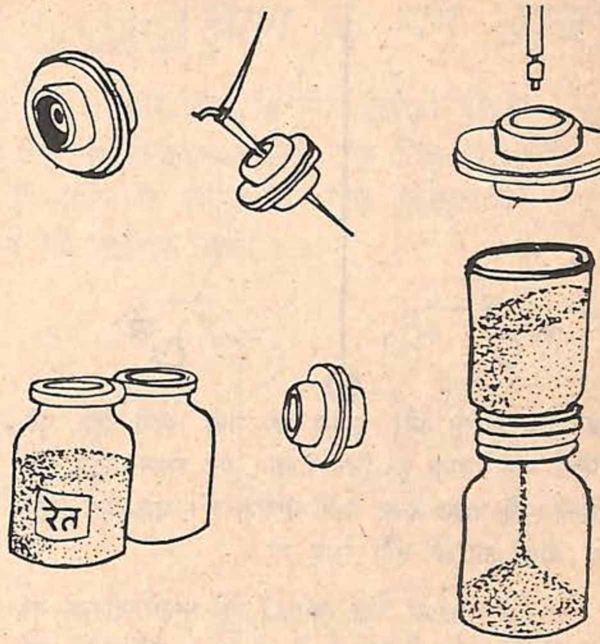
खुले मुंह का एक टीन का डिब्बा लो और उसके पेंदे के बीच में कील से एक बारीक छेद कर दो। एक बाल्टी में साफ़ पानी भरकर डिब्बे को उसमें तैरा दो। छेद से डिब्बे के अंदर धीरे-धीरे पानी भरने लगेगा। अगर पानी नहीं भरता है तो छेद को थोड़ा बड़ा कर दो। छेद इतना बड़ा हो कि डिब्बा लगभग पांच मिनट में डूब जाए। अब डिब्बे के अंदर से सारा पानी निकालकर उसे फिर से पानी के ऊपर तैराओ और डूबने का समय घड़ी देखकर पता करो। इस क्रिया को कम से कम पांच बार दोहराओ। सोचो इससे कितनी अवधि का समय मापा जा सकता है?

रेतघड़ी

इंजेक्शन की दो खाली शीशियां लो। ढक्कन भी होने चाहिए। ढक्कनों के सपाट हिस्सों पर पंचर सल्यूशन लगाकर उन्हें आपस में जोड़ दो।

अब बबूल के कांटे या कील से ढक्कनों के बीच में छेद करो। खाली बॉलपेन-रीफिल का लगभग आधा सेंटीमीटर टुकड़ा लो। इस टुकड़े को किसी तरह दोनों ढक्कनों के बीच में छेद में फंसा दो। रीफिल का टुकड़ा थोड़ा गीला होने से आसानी से चला जाएगा। अब तुम्हें ढक्कनों के बीच रीफिल में से एक साफ़-सीधा छेद दिखेगा।

अब एक शीशी को सूखी बारीक रेत से भरो।



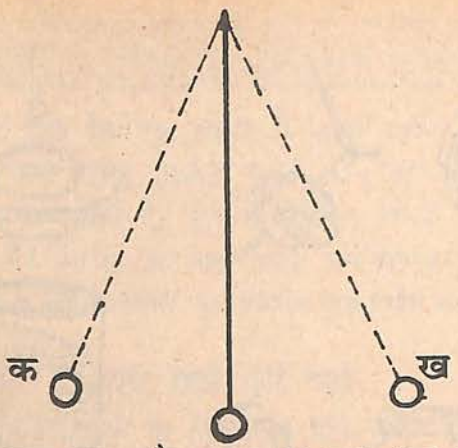
इस पर दोनों ढक्कन और दूसरी शीशी फिट कर दो। शीशियों को उलट दो। ऊपर की शीशी में भरी रेत रीफिल में से होती हुई नीचे की शीशी में गिरेगी। घड़ी में देखकर पूरे एक मिनट तक रेत गिरने दो। ऊपर की शीशी में बची रेत फेंक दो। इस तरह एक मिनट की रेतघड़ी बन जाएगी। बड़ी शीशियां इस्तेमाल करके समय की अधिक अवधि भी मापी जा सकती है। पर इससे मिनट से कम अवधि का समय नहीं मापा जा सकता है।

दोलक

दोलक के जिस गुण का उपयोग कर 17वीं शताब्दी में गैलीलियो ने घड़ी को ज़्यादा सटीक समय बताने वाली बनाया था, उसे तुम भी देख सकते हो। दोलक के उपयोग से समय को सेकेंडों में मापा जा सकता है।

लगभग 2 मीटर लंबा धागा लो और उसके एक सिरे पर एक पत्थर अच्छी तरह से बांध लो। अब इस पत्थर को दरवाज़े की चौखट में लगे कुंडे में, या कुंडा न हो तो कील ठोककर उससे, लटका दो। यह ज़रूरी नहीं है कि इसे चौखट में ही लटकाया जाए, कहीं भी लटकाओ, दोलक को झूलने के लिए जगह होनी चाहिए। साथ ही वहां तेज़ हवा आदि न हो।

इस तरह लटकता हुआ भार ही तुम्हारा **दोलक** है। पत्थर को एक ओर थोड़ा हटाकर छोड़ दो। ऐसा करने पर पत्थर स्वतंत्रतापूर्वक झूलना चाहिए। उसके इस झूलने को **दोलन** कहा जाता है। दोलक का **क** से



ख तक जाना और वापस **क** तक आना एक पूरा दोलन माना जाता है, चित्र देखो। यह ध्यान रखना कि दोलक को धक्का देकर नहीं चलाना है। बस एक तरफ को थोड़ा हटाओ और छोड़ दो।

घड़ी देखकर पता लगाओ कि तुम्हारे दोलक को एक दोलन करने में कितना समय लगता है? यह समय ही दोलक का **दोलनकाल** कहलाता है।

हो सकता है एक दोलन नापने में कठिनाई महसूस हो। एक साथ दस दोलनों का समय मापो। इसके आधार पर देखो कि एक दोलन में औसतन कितना समय लगा?

अब 20, 30, 40, 50 दोलन करने में दोलक को कितना समय लगता है देखो! अपने आंकड़े एक तालिका बनाकर लिखते जाओ।

हर बार का औसत दोलनकाल पता लगाओ। देखो कि क्या औसत दोलनकाल हर बार लगभग बराबर आया?



दोलनकाल दोलक की लंबाई पर निर्भर करता है या धागे में लटके पत्थर के भार पर? इसके लिए दो प्रयोग करो।

दोलक की लंबाई का दोलनकाल पर प्रभाव

जिस बिंदु से दोलक लटकाया है उस बिंदु और पत्थर के बीच की दूरी को दोलक की लंबाई मानो। दोलक की लंबाई 20 सेंटीमीटर रखकर उसके 50 दोलन का समय मापो। इसे तीन बार दोहराओ और 50 दोलनों में लगे समय का औसत निकालो। औसत निकालने के लिए तीनों बार लगे समय को जोड़कर 50 से भाग दो। अब दोलक की लंबाई 10-10 सेंटीमीटर बढ़ाकर इस क्रिया को दोहराओ। ऐसा तब तक करते जाओ, जब तक दोलक की लंबाई 100 सेंटीमीटर न हो जाए।

क्र.	धागे की लंबाई (सें.मी.)	50 दोलन का समय (सेकेंड में)			औसत	औसत दोलनकाल
		1	2	3		
1.	20					
2.	30					
3.	40					
4.	50					
5.	60					
6.	70					
7.	80					
8.	90					
9.	100					

अपने आंकड़ों को तालिका में लिखो। तालिका के आधार पर देखो कि क्या दोलक की लंबाई बढ़ाने पर दोलनकाल पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस आधार पर एक **सेकेंड दोलनकाल** वाले दोलक की लंबाई कितनी होनी चाहिए?

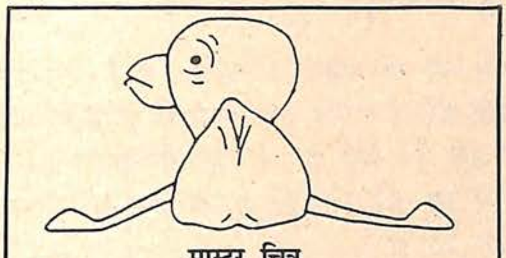
भार और दोलनकाल में संबंध

अलग-अलग वज़न के पत्थर लटकाने पर एक ही लंबाई के दोलकों के औसत दोलनकालों में क्या अंतर होगा, यह जानने के लिए दोलक की लंबाई स्थिर रखते हुए अलग-अलग वज़न के पत्थर लटकाकर औसत दोलनकाल पता करो।

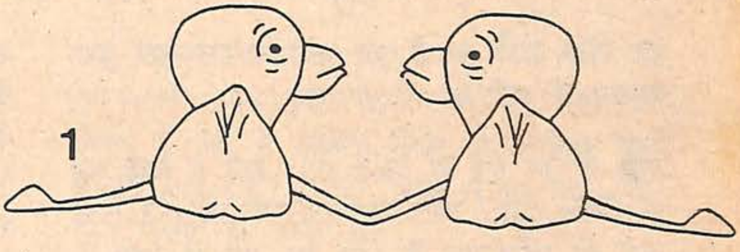
(सामग्री तथा चित्र होविशिका की बालवैज्ञानिक कक्षा 8 से साभार)

दर्पण के संग खेलो

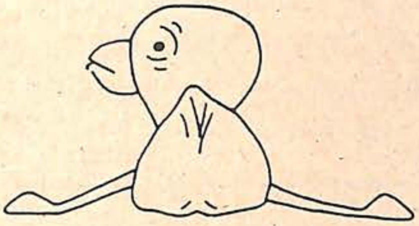
एक छोटा दर्पण या उसका टुकड़ा लो और **मास्टर चित्र** के पास रखकर उसका प्रतिबिंब देखो। प्रतिबिंब और मास्टर चित्र को मिलाकार एक नया चित्र बनता है। यहां दिए अन्य चित्र ऐसे ही बने हैं। दर्पण को थोड़ा आगे-पीछे खिसकाकर, तिरछा करके रखो और तुम भी बनाने की कोशिश करो!

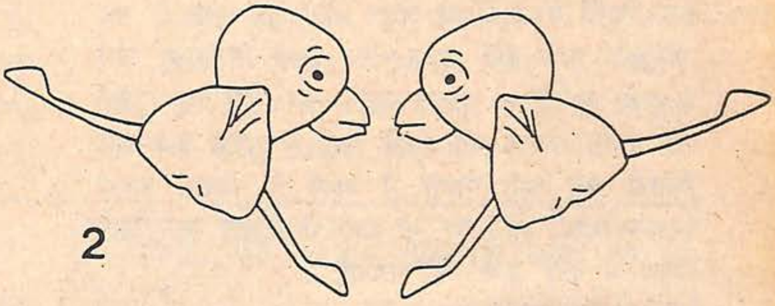


मास्टर चित्र

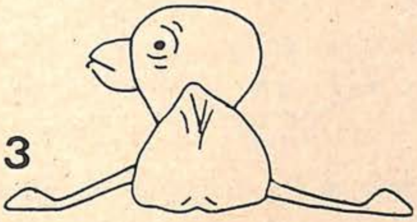


1

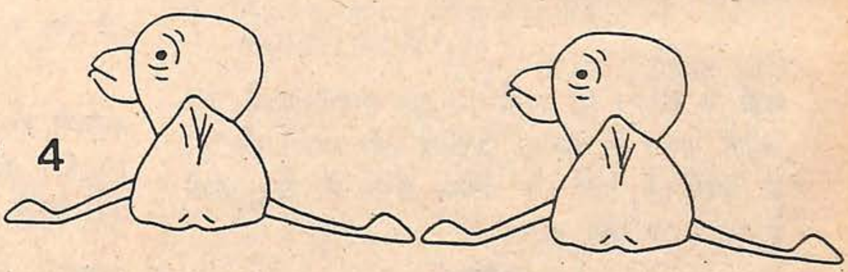




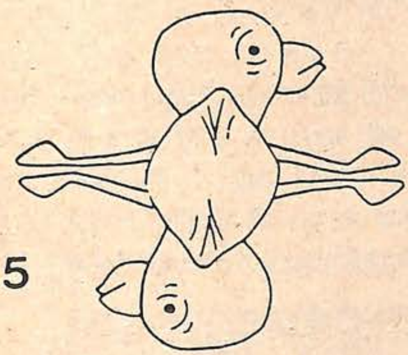
2



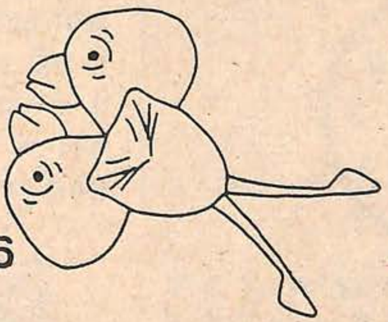
3



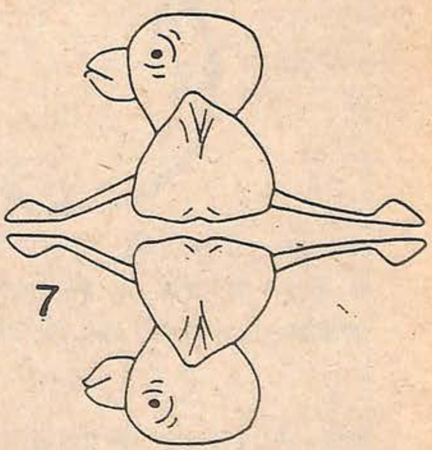
4



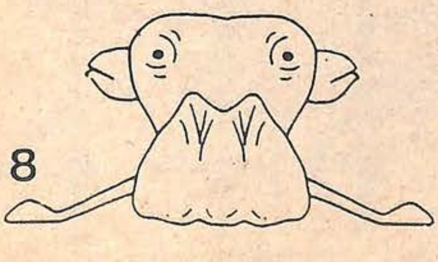
5



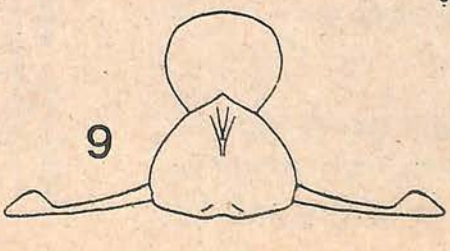
6



7



8



9



माथापच्ची

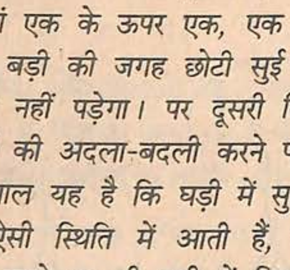
(1)

यह अंक घड़ी पर है, तो क्यों न इस बार कुछ माथापच्ची घड़ी पर ही हो जाए।

__घड़ी__ तो तुम रोज ही देखते होगे। घड़ी में बारह बजे की स्थिति देखो। छोटी और बड़ी यानि घंटे और मिनट दोनों की सुईयां एक के ऊपर एक, एक ही जगह हैं। इस स्थिति में बड़ी की जगह छोटी सुई लगा दें, तब भी कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। पर दूसरी स्थिति में, जैसे 6 बजे, सुईयों की अदला-बदली करने पर क्या होगा? भई हमारा सवाल यह है कि घड़ी में सुईयां कब और कितनी बार ऐसी स्थिति में आती हैं, जिसमें उनकी अदला-बदली करने पर भी घड़ी में दिखाए जाने वाले समय में कोई फ़र्क नहीं पड़ता?

(2)

__घड़ी__ के डायल पर 1 से 12 तक गिनती होती है। जरा अपनी गणित की महारत दिखाओ और डायल को ऐसे दो हिस्सों में बांटो कि प्रत्येक हिस्से में आने वाली संख्याओं का योग बराबर हो।



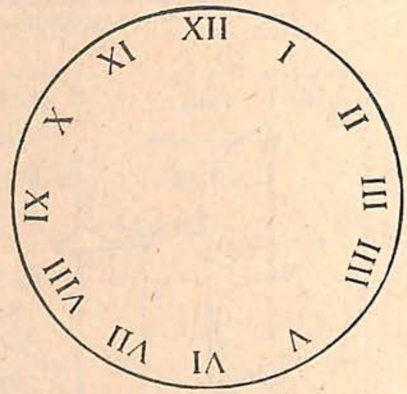
__जब__ तुम इसे हल कर लो, तो डायल को छह हिस्सों में बांटो। पर इसमें भी एक शर्त है, प्रत्येक हिस्से में आने वाली संख्याओं का योग समान हो।

(3)

__सुब्बू__ के पास दो रेत घड़ी हैं। एक चार मिनट की अवधि बताती है, दूसरी सात मिनट की। इन दोनों के सहारे दस मिनट की अवधि कैसे मापी जा सकती है?

(4)

__आमतौर__ पर तो घड़ियों में अंक अंग्रेज़ी अंक लिपि में लिखे होते हैं। कुछ पुरानी घड़ियों में रोमन पद्धति में भी होते हैं। ऐसी ही एक घड़ी के डायल को चार हिस्सों में इस तरह बांटो कि प्रत्येक हिस्से की संख्याओं का योग 20 हो।

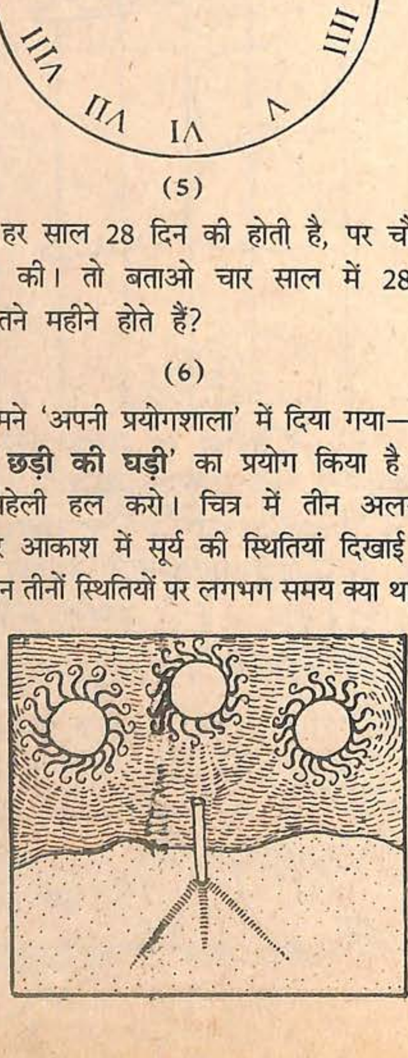


(5)

फ़रवरी हर साल 28 दिन की होती है, पर चौथे साल 29 दिन की। तो बताओ चार साल में 28 तारीख़ वाले कितने महीने होते हैं?

(6)

अगर तुमने 'अपनी प्रयोगशाला' में दिया गया—**'ज़मीन में गड़ी छड़ी की घड़ी'** का प्रयोग किया है तो चित्र में दी पहेली हल करो। चित्र में तीन अलग-अलग समय पर आकाश में सूर्य की स्थितियां दिखाई गई हैं। बताओ इन तीनों स्थितियों पर लगभग समय क्या था?



क्यों... क्यों... 6

मुनिया के बापू ने भारत दर्शन का कार्यक्रम बनाया। मुनिया तो खुशी से फूली नहीं समाई। तैयारी शुरू हो गई। रेल से जाने का विचार था। मुनिया की मां ने ढेर सारा सूखा पकवान बनाकर रख लिया ताकि सफ़र के दौरान काम आए।

यात्रा शुरू हुई। मुनिया को बड़ा मज़ा आ रहा था। रेलों की भीड़ और उसके बाहर की भागती हुई दुनिया दोनों मज़ेदार थीं।

मुनिया के दिमाग़ में कोई सवाल आता तो वह बापू से पूछ लेती। अलबत्ता उसे मां से ही डर लगता था।

उसने देखा कि जब भी कोई नदी आती मां झट से बापू से पूछतीं, कौन सी नदी है? और उत्तर पाकर कभी चुप रह जातीं कभी अपने बटुए से एकाध सिक्का निकालकर जल्दी से नदी में फेंक देतीं। मुनिया का मन हुआ मां से पूछे, क्यों फेंक रहीं हैं पैसे।

मुनिया ने बापू से पूछा। बापू बोले, बेटा फेंक नहीं रहीं हैं, चढ़ा रही हैं नदी को! मुनिया ने पूछा किसलिए? बापू बोले, यह तो अपनी अम्मां से ही पूछो।

मुनिया हिम्मत कर रही है पूछने की। तब तक तुम अपने आसपास खोजो इस सवाल का उत्तर। **क्यों चढ़ाते हैं नदी में सिक्के? सिक्के तो आखिर पानी में डूब जाते होंगे? मिट्टी, पत्थर में दब जाते होंगे! क्या कारण हो सकते हैं?**

तुम्हारे जवाब हमें **15 मई, 1991 तक** मिल जाने चाहिए। लिफाफ़े, पोस्टकार्ड आदि पर '**क्यों.. क्यों.. 6**' लिखना मत भूलना। और हां यह भी लिखना कि **तुमने कैसे, किससे पता** किया।

---

(7)

चलो *एक सरल सवाल भी पूछ लेते हैं। घड़ी में कब ऐसी स्थिति होती है कि, जितने बजने वाले होते हैं, उतने ही मिनट की देर होती है।*

(8)

अब *इस क्रम में आखिरी सवाल! मान लो एक अप्रैल यानी मूर्ख दिवस को रात 9 बजे तुम सो गए। सोने से पहले तुमने सुबह उठने के लिए, घड़ी में सुबह 10 बजे का अलार्म लगाया। अलार्म बजा और तुम उठ भी गए। बताओ कुल कितने घंटे सोए?*

(9)

चार के इन आठ अंकों से 500 को कैसे दर्शाया जा सकता है?

4 4 4 4

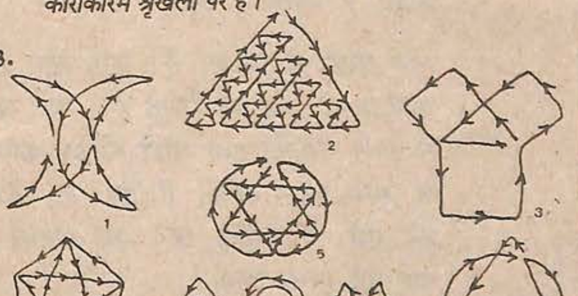
4 4 4 4

माथा पच्ची : हल, जनवरी अंक के

1. 9

2. सियाचिन ग्लेशियर, जो हिमालय की काराकोरम श्रृंखला पर है।

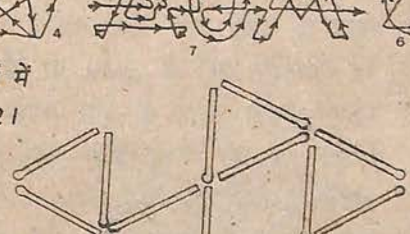
3.



4. पूर्व में

5. 1:2।

6.



8. 12।

9. धुएं में वज़न होता है। क्योंकि उसमें अधजले कार्बन के कण होते हैं।

12. 8 घंटे।

13. छिपकली की पानी की ज़रूरत, भोजन में खाने वाले कीड़ों से प्राप्त पानी से पूरी हो जाती है।

14. 18।

क्यों.. क्यों.. 1 :

पाठकों के उत्तर

सितंबर, 90 के अंक से शुरू हुए 'क्यों.. क्यों' स्तंभ में सभी पाठक उत्साह से भाग ले रहे हैं। 'क्यों.. क्यों.. 1' के जवाब में हमें 100 से ऊपर पत्र मिले हैं। सवाल शायद तुम्हें याद हो! चलो दोहराए देते हैं—**बहुत से लोग जब खाना खाने बैठते हैं तो थाली के चारों तरफ पानी का एक घेरा-सा बनाते हैं। ऐसा क्यों किया जाता है?**

कुछ पाठकों ने अपने जवाब में दो से अधिक कारण लिखे हैं। कुछ कारणों को उन्होंने धार्मिक भावना से जुड़ा बताया है और कुछ को वैज्ञानिक धारणा से। हमने उत्तरों के आधार पर सभी पत्रों को चार भागों में बांटा है।

1 *भोजन को किसी की बुरी नज़र, बुरी आत्मा, अलाय-बलाय से बचाना और मन की शुद्धि के लिए ऐसा किया जाता है। ऐसे जवाब 7 लोगों ने भेजे।*

2. *अन्न धरती से मिलता है। कुछ लोग उसे भगवान की कृपा भी मानते हैं। अतः खाने से पहले भगवान तथा धरती को इस कामना के साथ भोग लगाते हैं कि यह भोजन हमें ऐसे ही मिलता रहे। **48** पाठकों ने यह मत व्यक्त किया।*

3. *खाने से पहले हाथ धोना चाहिए। आमतौर पर भारतीय घरों में ज़मीन पर बैठकर ही भोजन किया जाता है और अधिकांश घर मिट्टी के बने कच्चे फर्श वाले होते हैं, इसलिए थाली की जगह के आसपास की धूल दबाने के लिए ऐसा किया जाता है। ऐसा मानने वाले **26** पाठक हैं।*

4. *37 पत्रों में यह विचार व्यक्त किया गया है कि ज़मीन पर बहुत से छोटे-मोटे कीड़े, चीटियां तथा सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। भोजन की गंध पाकर वे थाली की ओर बढ़ते हैं। थाली में पहुंचने से रोकने के लिए ही पानी का घेरा बनाया जाता है।*

अब तुम पूछोगे इसमें से कौन-से उत्तर सही हैं? तो भई हम इस सही-गलत के झंझट में नहीं पड़ना चाहते। जैसा कि हमने सितंबर के अंक में ही कहा था किसी भी बात के कई कारण हो सकते हैं। अब कुछ कारण तुम्हारे सामने हैं। तुम अपने विश्लेषण से खुद ही तय करो।

जिन पाठकों ने जवाब भेजे, उनके नाम हैं—विनया पुराणिक, धार। वीरेन्द्र अग्रवाल, सरगुजा। ऋतु मालविया, मनावर। सचिन खले, रजत अग्रवाल, आरती राय, सत्येंद्र सिंह रघुवंशी, रीता अग्रवाल, अखिलेश मालविया, हरदा। विनोद वर्मा, मगरधा। मुरलीधर, कोसवाल। मुकेश कुशवाहा, करकरी, शहडोल। गौतम खंडेलवाल, होशंगाबाद। रजनी गुप्ता, एम.के. रायकवार, इंदौर। राधेश्याम यादव, रायपुर। मुकेश, रायगढ़। रचना रघुवंशी, कीरतपुर। नीरजा सातपुते, कांकेर। गनपत प्रसाद, कर्सुआ। सीताराम, कुठिया मेहगांव। निकहत अफ़रोज, रचना बनईत,भोपाल। अनिलकुमार, मदनपुर। रामकुमार, श्यामकुमार,आलीराजपुर। परागसिंह गहलोत, शुजालपुर मंडी। प्रणोद बोकील, झाबुआ। सरोज बड़ोले, उज्जैन। एस. नागराज, बस्तर। ओम प्रकाश पायक, मंदसौर। अर्जुन सिंह दुर्ग। **सभी म.प्र.।**

गणेशसिंह, सिवान। सुनील श्रीवास्तव, बगेन। हेमंत ठाकुर, ठाहर। रघुनाथ शर्मा, बसीडीहां। गणेश शर्मा, अखतवारा। अजय पाण्डेय, देवपुर। मुकेश पाठक, लालगढ़। सुनीता विश्वकर्मा, बहुआर। ध्रुवसिंह, बामोर। श्याम किशोर शर्मा, कुर्जीबालूपर। राघवेंद्र कुमार, परमजीवरा। संतोष मिश्र, बिहिया। निर्मल कुमार गोयल, गोपाल अग्रवाल, सालिमपुर अहरा। ललन कुमार, गोपालपुर। आलोक, कुहुरानी, जुहुरानी, साहिबगंज। अरुण कुमार,चकस्तुरी। सीमा कुमारी, अमित कुमार, पटना। अखिलेश, लखनीवीघा, संतोष कुमार, नवहटा। सत्यसरोज, सीतामढ़ी। तौहिद जौहर, रिकाबगंज। राजेश, मुरारपुर। नीलम सिंह, सारण। विनोदसिंह, रोहतास। किशोर चंद, पालीगंज। अरुण शर्मा, नारायणपुर। अरविंद कुमार, सिसई। सोनू; गोपालगंज। प्रदीप कुमार, शंकरपुर इमामगंज। कुबेर शरण द्विवेदी, छपड़ौर। गंगाधर नारंग, जवाली। प्रभात श्रीवास्तव, जैथारी। **सभी बिहार।**

बृजेश पाण्डेय, सुलतानपुर। रघुराज मोर्य, बढ़ियानी कलां।नीरजवर्मा, बिलग्रांम। बारलकराम बरई, रामदासपुर मझोली। मोनिका अग्रवाल, गोण्डा। जयराम यादव, बरनई। रामयश, बरौलिया। भगवान सिंह यादव, मीरामपुर। रामनयन, परसिया। नीतू सचान, कन्नौज। आदित्य मिश्र, बिछलखा। डिकरसिंह, पजैना। गणेश शुक्ल, रायबरेली। ब्रजेन्द्र बहादुर, इटावा। **सभी उ.प्र.।**

हनुमान सहाय रावत, कमलेश अग्रवाल, पालड़ी। विजेन्द्र अग्रवाल, नरेंद्र टाक, अजमेर। चेतराम जाट, जयपुर। टीकूराम छापरवाल, कीकरवाली। सुशील जोशी, देसूरी। राजेन्द्र प्रसाद, किशनगढ़। जमना प्रजापत, बीकानेर। बन्नाराम चौधरी, खुडियाला। राजश्री बिन्नाणी, चुरू। **सभी राजस्थान।**

तरुण शर्मा, शहानाराय, राहुल नैथानी, **दिल्ली**। मेघना पाण्डे, **पुरी**।

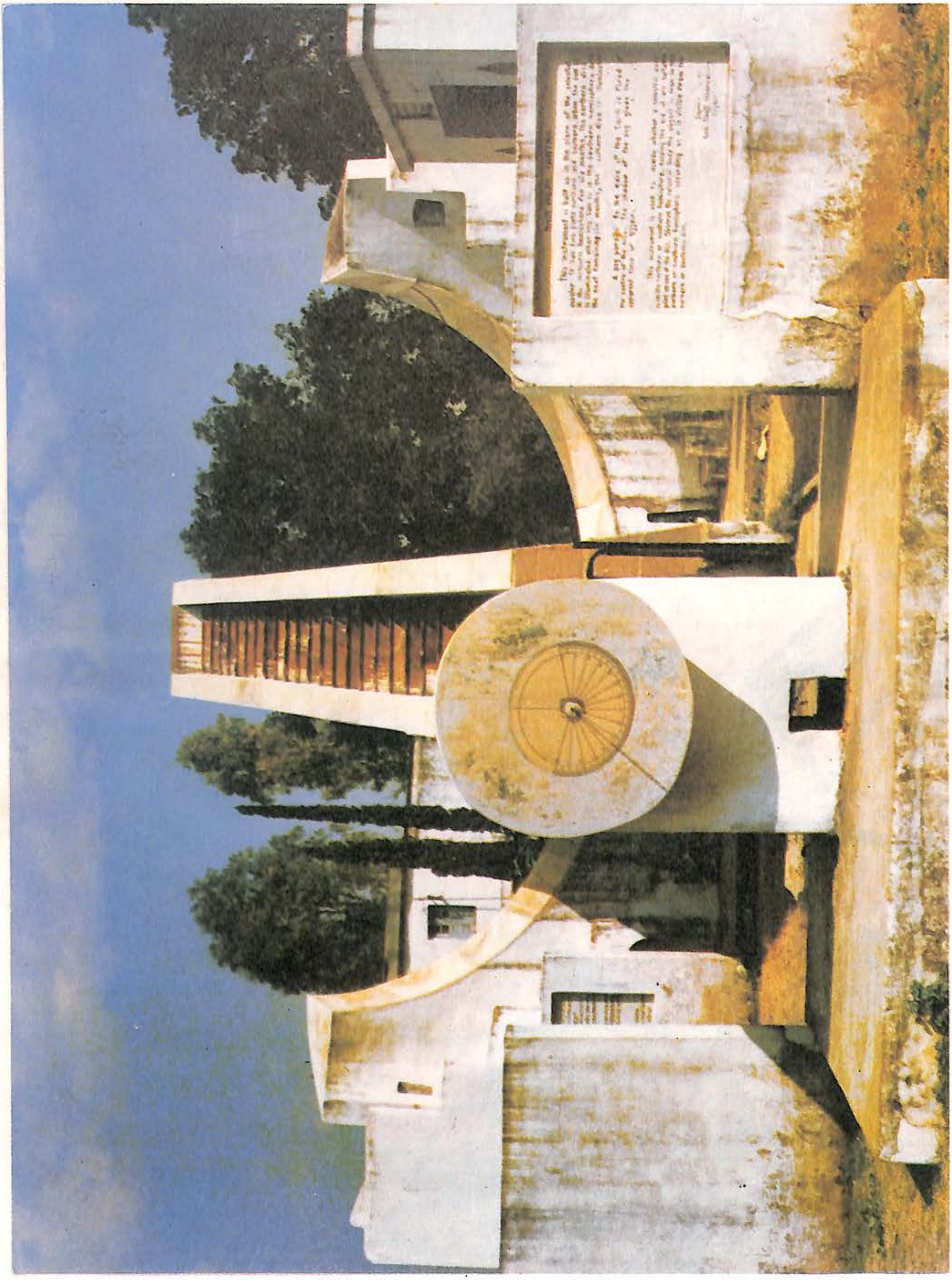


मैत्रेयी कुलकर्णी, छह वर्ष, पूना



राजेन्द्र सिंह चौहान, चौथी, मानकुंड, देवास

पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्टार द्वारा पंजीकृत।
डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/91



उज्जैन की वेधशाला में **सम्राट** तथा **नाड़ी वलय** यंत्र।
फोटो : के.आर. शर्मा।

रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित।
संपादक : विनोद रायना।